इस्लाम
आधुनिक युग का निर्माता

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

इतिहासकारों ने आम तौर पर माना है कि अरब-मुसलमानों के माध्यम से जो ज्ञान-विज्ञान यूरोप पहुँचा, आख़िरकार वही यूरोप के नवजागरण (renaissance) या सही शब्दों में प्रथम जागरण पैदा करने का कारण बना। प्रोफ़ेसर हिट्टी ने लिखा है कि 832 ई० में बग़दाद में ज्ञान-सदन बनाने के बाद जिसे बैत-अल-हिक्मा (House of Wisdom) कहा जाता है, अरबों ने जो अनुवाद किए और जो पुस्तकें तैयार की, वह लैटिन भाषा में अनूदित होकर स्पेन और सिसली के रास्ते से यूरोप पहुँची और फिर वह यूरोप में नवजागरण के पैदा होने का कारण बनीं। लेकिन सवाल यह है कि ख़ुद अरब-मुसलमानों के अंदर यह मानसिकता और सोच का विशिष्ट दृष्टिकोण कैसे पैदा हुआ, जबकि वे ख़ुद भी पहले उसी आम पिछड़ेपन की हालत में पड़े हुए थे जिसमें सारी दुनिया के लोग पड़े हुए थे। इसका जवाब सिर्फ़ एक है, वह है— 'ईश्वर को एक मानने का विश्वास' (monotheism)। यही उनके लिए इस मानसिक और व्यावहारिक क्रांति का कारण बना।

इस पुस्तक का उद्देश्य केवल यह है कि एक विशेष ऐतिहासिक घटना, जिसे लोगों ने सिर्फ़ एक मुस्लिम समुदाय के कारनामों के नाम पर लिख रखा है, इसे ज़्यादा सही तौर पर 'इस्लाम की देन' के अंतर्गत दर्ज किया जाए। यह केवल एक ज्ञात घटना को स्पष्ट रूप से सामने लाना है, न कि किसी अज्ञात घटना की सूचना देना।
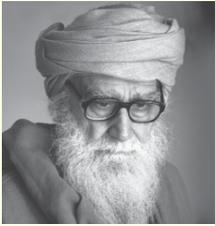
मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान 'सेंटर फॉर पीस एंड स्प्रिचुएलिटी', नई दिल्ली के संस्थापक हैं। मौलाना का मानना है कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। विश्व-शांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त है।

CPS International
centre for peace & spirituality
cpsglobal.org

Goodword
goodwordbooks.com

ISBN 978-93-89766-09-7

₹90.00

इस्लाम
आधुनिक युग का निर्माता

लेखक
मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

अनुवादक
तनवीर अहमद

संपादन टीम
मोहम्मद आरिफ़
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
मौलाना फ़रहाद अहमद
इमरान अहमद इस्लाही

विषय-सूची

दो शब्द

अमेरिकी अंतरिक्ष-यात्री नील आर्मस्ट्रांग (Neil Armstrong) पहला व्यक्ति है जिसने चार दिनों की अंतरिक्ष यात्रा के बाद 20 जुलाई, 1969 को चाँद पर अपना क़दम रखा और वहाँ पहुँचकर यह ऐतिहासिक शब्द कहे—

"एक इंसान के लिए यह एक छोटा क़दम है, लेकिन इंसानियत के लिए बहुत बड़ी छलाँग है।"

"That's one small step for a man, one giant leap for mankind." (I/530).

आर्मस्ट्रांग और उनके साथी एडविन एल्ड्रीन और माइकल कोलिंस ने एक विशेष रॉकेट अपोलो-11 पर यात्रा की और अंतिम चरण में एक अंतरिक्ष यान ईगल के द्वारा चाँद की सतह पर उतरे।

अपोलो रॉकेट और अंतरिक्ष यान ईगल कोई जादुई उड़नखटोला नहीं था। यह प्रकृति के अटल नियमों के तहत बनी हुई एक साइंटिफिक मशीन थी। उसने प्रकृति के नियमों का उपयोग करके यह पूरी अंतरिक्ष यात्रा तय की। ये नियम हमारी दुनिया में लाखों वर्षों से मौजूद थे, लेकिन इंसान इससे पहले कभी यह सोच न सका कि वह प्रकृति के इस नियम को जाने और इसे उपयोग करके चाँद तक पहुँचने का प्रयास करे।

प्रकृति में मौजूद संभावनाओं के बावजूद चाँद तक पहुँचने में इस देरी का कारण क्या था? यह कारण बड़े पैमाने पर फैला हुआ अनेकेश्वरवाद था। दूसरे शब्दों में, निर्जीव और सजीव चीज़ों को देवी-देवता समझकर उन्हें इबादत[1] के योग्य समझना और उनकी पूजा-आराधना (worship) करना।

प्राचीनकाल में अनेकेश्वरवाद का विश्वास पूरी दुनिया में छाया हुआ था। इंसान दूसरी चीज़ों की तरह चाँद को भी अपना ईश्वर समझता था। चमकदार चाँद

---

[1] एक ईश्वर की पूर्ण समर्पण भाव एवं निष्ठा से भक्ति एवं उपासना करना।

को देखकर इंसान के मन में उसके आगे झुकने का विचार उत्पन्न होता था, न कि उसे जीतने का प्रयास करने का। चाँद को पवित्र और पूजनीय समझना इसमें रुकावट बन गया कि इंसान चाँद को जीतने की बात सोच सके। सातवी सदी में पहली बार ऐसा हुआ कि इस्लाम के माध्यम से वह क्रांति आई, जिसने अनेकेश्वरवाद के वर्चस्व को समाप्त करके 'एक ईश्वर में विश्वास' को एक प्रभावी सोच बना दिया। यह क्रांति सबसे पहले अरब में आई। उसके बाद वह एशिया और अफ़्रीक़ा की यात्रा करती हुई यूरोप पहुँची, फिर वह अटलांटिक को पार कर अमेरिका में प्रवेश कर गई। मुस्लिम दुनिया में यह क्रांति धर्म के प्रभाव के माध्यम से आई, जबकि पश्चिमी दुनिया ने अपनी विशेष परिस्थितियों के प्रभाव में इस क्रांति को धर्म से अलग करके इसे एक सांसारिक ज्ञान और धर्मनिरपेक्ष विज्ञान के रूप में विकसित करना शुरू किया और फिर इसे आज के दिनों की ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

जिस तरह राष्ट्रीयकरण (nationalization) मार्क्सवाद की दार्शनिक प्रणाली का एक आर्थिक हिस्सा है, उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान (modern science) इस्लामी क्रांति का एक अधूरा हिस्सा है, जिसे उसकी पूरी हस्ती से अलग कर लिया गया है।

चाँद की यात्रा की चर्चा यहाँ एक उदाहरण के रूप में की गई है। यही उन सभी ज्ञान-विज्ञानों का मामला है, जिन्हें आज के समय में प्राकृतिक विज्ञान (natural science) कहा जाता है। ये विज्ञान प्राचीनकाल में प्रकृति की घटनाओं (nature's phenomena) को पवित्र और पूजनीय समझ लिये जाने के कारण वर्जित ज्ञान बना दिए गए थे। ईश्वर को एक मानने की क्रांति ने प्राकृतिक चीज़ों को सम्मान और आस्था के पद से हटाकर उनकी जाँच और खोज का द्वार खोल दिया।

इस प्रकार मानव इतिहास में सृष्टि के बारे में स्वतंत्रतापूर्वक जाँच-पड़ताल और खोज के कामों का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर हज़ार साल की मेहनत और सफ़र के बाद आख़िरकार आज के आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी तक पहुँचा। आधुनिक विज्ञान पूरी तरह से इस्लामी क्रांति की देन है। शुरुआती दौर में प्रत्यक्ष रूप से (directly) और उसके बाद अप्रत्यक्ष रूप से (indirectly)।

इस सच्चाई को आम तौर पर किसी-न-किसी अंदाज़ में स्वीकार किया गया है। हाल के वर्षों में कई ऐसी किताबें लिखी गई हैं, जैसे— 'अरबों के

वैज्ञानिक कारनामे' (The Scientific Achievements of the Arabs) या 'सभ्यता के विकास में मुसलमानों का योगदान' (The Muslim's Contribution to Civilization) इत्यादि।

विद्वानों और खोज करने वालों ने आम तौर पर इस बात को माना है कि आधुनिक औद्योगिक प्रगति (modern industrial progress) अरब मुसलमानों के प्रभावों से ही हमारे सामने आई।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक ए. हम्बोल्ट (A. Humboldt) ने कहा है—

"असल में अरब ही हैं जिन्हें सही अर्थों में भौतिक विज्ञान (physics) का असली संस्थापक समझा जाना चाहिए।"

It is the Arabs who should be regarded as the real founders of physics. (p. 25)

फ़िलिप हिट्टी ने अपनी किताब 'हिस्ट्री ऑफ़ दि अरब' में लिखा है कि मध्य युग के किसी भी समुदाय ने मानव विकास में इतना अधिक योगदान नहीं दिया, जितना अरबों ने और अरबी भाषा बोलने वालों ने दिया।

"No people in the Middle Ages contributed to human progress so much as did the Arabsand the Arabic-speaking people." (p. 4)

इतिहासकारों ने आम तौर पर माना है कि अरब-मुसलमानों के माध्यम से जो ज्ञान-विज्ञान यूरोप पहुँचा, आख़िरकार वही यूरोप के नवजागरण (renaissance) या सही शब्दों में प्रथम जागरण पैदा करने का कारण बना। प्रोफ़ेसर हिट्टी ने लिखा है कि 832 ई० में बग़दाद में ज्ञान-सदन बनाने के बाद जिसे बैत-अल-हिक्मा (House of Wisdom) कहा जाता है, अरबों ने जो अनुवाद किए और जो पुस्तकें तैयार की, वह लैटिन भाषा में अनूदित होकर स्पेन और सिसली के रास्ते से यूरोप पहुँची और फिर वह यूरोप में नवजागरण के पैदा होने का कारण बनीं।

This stream was re-diverted into Europe by the Arabs in Spain and Sicily, whence it helped create the Renaissance of Europe. (p. 307)

लेकिन सवाल यह है कि ख़ुद अरब-मुसलमानों के अंदर यह मानसिकता और सोच का विशिष्ट दृष्टिकोण कैसे पैदा हुआ, जबकि वे ख़ुद भी पहले उसी

आम पिछड़ेपन की हालत में पड़े हुए थे जिसमें सारी दुनिया के लोग पड़े हुए थे। इसका जवाब सिर्फ़ एक है, वह है— 'ईश्वर को एक मानने का विश्वास' (monotheism)। यही उनके लिए इस मानसिक और व्यावहारिक क्रांति का कारण बना। दूसरे समुदायों के पास अनेकेश्वरवाद की आस्था थी, जबकि इस्लामी क्रांति के बाद अरबों के पास एकेश्वरवाद की भावना का विशिष्ट दृष्टिकोण। इसी अंतर ने दोनों के इतिहास में यह अंतर पैदा कर दिया कि एक इतिहास का साधारण रूप बना रहा और दूसरा इतिहास को ख़ुद से आकार देने वाला बन गया।

इस पुस्तक का उद्देश्य केवल यह है कि एक विशेष ऐतिहासिक घटना, जिसे लोगों ने सिर्फ़ एक मुस्लिम समुदाय के कारनामों के नाम पर लिख रखा है, इसे ज़्यादा सही तौर पर 'इस्लाम की देन' के अंतर्गत दर्ज किया जाए। यह केवल एक ज्ञात घटना को स्पष्ट रूप से सामने लाना है, न कि किसी अज्ञात घटना की सूचना देना।

एक उदाहरण से इस बात को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—

यह एक ज्ञात सत्य है कि भारत 1947 ई० में आज़ाद हुआ। कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि भारत को गाँधी और नेहरू ने आज़ाद कराया, लेकिन गहराई से देखा जाए तो यह कहना सही होगा कि अपने देश में अपने लोगों के द्वारा अपनी ख़ुद की लोकतांत्रिक सरकार बनाने की नई सोच ने भारत को आज़ाद कराया। पिछले कुछ वर्षों में लोगों द्वारा सरकार चुनने और शासन चलाने की माँग तथा देशों और समुदायों की आज़ादी की सोच पर सारी दुनिया में जो विशेष प्रकार के परिवर्तन आए, उनसे वह हालात पैदा हुए कि कोई गाँधी या नेहरू उठे और देश को आज़ादी की ओर ले जाने में कामयाब हो सके। अगर दुनिया भर में हुए इस परिवर्तन का यह वातावरण समुदायों की आज़ादी की माँग के साथ ताल-मेल न कर रहा होता तो हमारे नेताओं के द्वारा शुरू किया गया स्वतंत्रता आंदोलन भी सफलता के साथ आगे न बढ़ पाता। इस पुस्तक में आगे की चर्चा का विषय भी यही है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अरब-मुसलमानों के माध्यम से ही दुनिया में आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति (modern scientific revolution) की शुरुआत

हुई, लेकिन ख़ुद इस शुरुआती हौसले और जोश का कारण भी यही था कि इस्लाम ने इन्हें एक नई सोच और विचारधारा (new way of thinking) दी।

इस प्रकार विज्ञान का इतिहास सिर्फ़ एक क़ौम या समुदाय का कारनामा नहीं रहता, बल्कि उस दीन (धर्म) के योगदान के रूप में स्वीकार किया जाता है, जो हमेशा के लिए सारे इंसानों को सही और सीधा रास्ता दिखाने के लिए ईश्वर के द्वारा अपने बंदों की ओर भेजा गया है।

प्रसिद्ध इतिहासकार हेनरी पिरेन (Henri Pirenne) ने इस ऐतिहासिक सच्चाई को इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"इस्लाम ने दुनिया का चेहरा बदल डाला। इतिहास के पुराने रीति-रिवाज वाले ढाँचे को उखाड़कर फेंक दिया गया।"

Islam changed the face of the globe. The traditional order of history was overthrown. (History of Western Europe)

प्रस्तुत पुस्तक इस्लाम की क्रांति के इसी पहलू की पहचान कराती है। इस विषय पर मैं विस्तृत किताब तैयार करना चाहता था। सूचना और जानकारी जमा करने का काम बहुत ही धीमी गति से चल रहा था। आख़िरकार मुझे अहसास हुआ कि मैं अपने मौजूदा काम के दबाव के कारण असल मक़सद की एक विस्तृत और बड़ी किताब शायद तैयार न कर सकूँगा, इसलिए यह फ़ैसला करना पड़ा कि जितना काम हो चुका है, उसे बिना किसी देरी के एक किताब का रूप देकर लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाए।

अगर वक़्त और हालात ने मौक़ा दिया और ईश्वर ने चाहा तो आगे चलकर इसमें और अधिक खोज, रिसर्च और चर्चा की बढ़ोतरी की जा सकेगी और अगर ऐसा संभव न हुआ तो यह पहली किताब किसी बाद में आने वाले के लिए एक बेहतर किताब की तैयारी में मददगार हो सकती है।

वहीदुद्दीन ख़ान
14 अप्रैल, 1989

अध्याय 1

इस्लाम : आधुनिक युग का निर्माता

1965 की घटना है। उस समय मैं लखनऊ के सफ़र पर था। मेरी मुलाक़ात एक उच्च शिक्षा प्राप्त ग़ैर–मुस्लिम से हुई। वे धर्म में विश्वास नहीं रखते थे और धार्मिक बातों को व्यर्थ समझते थे। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा— "इस्लाम को अगर इतिहास से निकाल दिया जाए तो विश्व-इतिहास में क्या कमी रह जाएगी?" यह सुनकर मेरी ज़बान से निकला— "वही कमी, जो इस्लाम के आने से पहले इतिहास में थी।" मेरे इस जवाब पर वह तुरंत ख़ामोश हो गए। उन्होंने महसूस किया कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सही है कि वह सब कुछ जिसे उन्नति कहा जाता है, वह इस्लाम से पहले दुनिया में मौजूद न थी, यह सिर्फ़ इस्लाम के बाद हमारे सामने आई। फिर भी उन्हें इसमें संदेह था कि इस सारी उन्नति का कोई संबंध उस ऐतिहासिक घटना से है, जिसे इस्लाम या इस्लामी क्रांति कहा जाता है।

इस किताब में इसी ऐतिहासिक सवाल की जाँच-पड़ताल और समीक्षा की गई है। इसमें उस संबंध की गहन जाँच की गई है, जो इस्लामी क्रांति और आधुनिक विकास (modern developments) के बीच पाया जाता है। इस संबंध में कुछ उन पहलुओं पर भी बात की गई है, जो इस चर्चा के विषय से जुड़े हुए हैं या इस विषय पर केवल अप्रत्यक्ष (indirect) रूप से प्रभाव डालते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस्लाम मूल रूप से ईश्वरीय मार्गदर्शन (Divine Guidance) है यानी वह सही और सीधा रास्ता, जो व्यक्ति को परलोक की सफलता का रास्ता दिखाता है। वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास (scientific and industrial development) सीधे तौर पर इस्लाम का उद्देश्य नहीं है, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास इस्लामी क्रांति का ही एक परिणाम है। अगर इस्लामी क्रांति दुनिया में न आती तो

वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास भी आम लोगों के सामने आए बग़ैर यूँ ही पड़ा रहता, जिस तरह वह इस्लामी क्रांति के आने से पहले पड़ा हुआ था।

पेड़ का वास्तविक उद्देश्य फल देना है, लेकिन जब वह बड़ा होता है तो वह लोगों को छाया भी देता है। यही मामला इस्लाम का भी है। इस्लाम का विशेष उद्देश्य लोगों के ऊपर ईश्वरीय मार्गदर्शन का दरवाज़ा खोलना है, ताकि वे अपने रब की निकटता हमेशा-हमेशा के लिए प्राप्त कर सकें। इस्लाम संपूर्ण सच्चाई है और पूरी सच्चाई जब लोगों के सामने आती है तो वह हर प्रकार से मानवता के लिए भलाई, फ़ायदे और उपयोगिता का कारण बनती है— प्रत्यक्ष रूप से (directly) और अप्रत्यक्ष रूप से (indirectly) भी।

अँधेरे से रोशनी तक

ईश्वर ने एक बेहतरीन दुनिया बनाई और फिर इंसान को बिल्कुल सही रूप में पैदा किया। ईश्वर ने इंसान से कहा कि तुम इस दुनिया में रहो और इससे फ़ायदा उठाओ। इसी के साथ इंसान को यह भी बता दिया कि तुम्हारा सृजनहार (Creator) सिर्फ़ एक है। इसी एक ईश्वर की इबादत करो। इसके सिवा किसी और को अपना रब (न बनाओ, लेकिन इंसान सीधे रास्ते से भटक गया। वह अनदेखे और अदृश्य ईश्वर को अपने ध्यान का केंद्र न बना सका। वह दिन-प्रतिदिन दिखाई देने वाले और बनावटी ईश्वरों की ओर बहकता चला गया। जो भी चीज़ उसे देखने में बड़ी, प्रभावशाली और शानदार नज़र आई, उसके बारे में उसने समझ लिया कि वह ईश्वर है या वह अपने अंदर ईश्वरीय गुण रखता है। इस प्रकार एक ओर महापुरषों के दिव्य होने के प्रति पवित्रता की आस्था पैदा हुई और दूसरी ओर प्रकृति की उपासना (nature worship) का सिलसिला शुरू हुआ, जिसे सर्वेश्वरवाद (pantheism) कहा जाता है।

ईश्वर के अतिरिक्त किसी चीज़ या किसी व्यक्ति की उपासना का नाम ही अनेकेश्वरवाद है। यह अनेकेश्वरवाद धीरे-धीरे आस्था, विश्वास और काम-काज के सभी पहलुओं पर छा गया। शुभ-अशुभ, शगुन और अपशगुन की मनगढ़ंत सोच और आस्थाओं के तहत वह सारे घरेलू रस्मो-रिवाज में सम्मिलित हो गया

और राजा को 'ईश्वर का प्रतिनिधि' (Divine King) मानने की विचारधारा के रूप में वह राजनीतिक प्रणाली का आवश्यक अंग बन गया।

प्राचीन समय में यही सारी दुनिया के लोगों का धर्म था। प्राचीन दुनिया पूरी तरह से उन मनगढ़ंत आस्थाओं पर क़ायम हो गई थी, जिसे धार्मिक भाषा में अनेकेश्वरवाद (polytheism) और आम भाषा में अंधविश्वास (superstition) कहा जाता है। अतीत में जितने भी पैग़ंबर[1] आए, वे सब-के-सब इसी बिगाड़ के सुधार के लिए आए। उन्होंने हर ज़माने में लोगों को इस बात का निमंत्रण दिया कि अनेकेश्वरवाद को छोड़ो और एकेश्वरवाद को अपनाओ। एक वर्णन के अनुसार, आदम से लेकर मसीह तक एक लाख से ज़्यादा पैग़ंबर आए, लेकिन इंसान उनकी बातों को मानने के लिए राज़ी न हुआ। पैग़ंबरों का ऐलान सत्य की घोषणा तक ही सीमित रहा, वह इस सत्य पर आधारित क्रांति तक न पहुँच सका।

अनेकेश्वरवाद को समाप्त करने का मामला साधारण अर्थ में केवल एक धार्मिक मामला न था, बल्कि इसका संबंध इंसान के सारे मामलों से था। सच्चाई यह है कि अनेकेश्वरवाद का यह प्रभुत्व और दबदबा हर प्रकार के मानवीय विकास को रोके हुए था। इसने प्राकृतिक चीज़ों को पूजनीय और पवित्रता की पदवी देकर इसकी जाँच-पड़ताल और खोज की मानसिकता को समाप्त कर दिया था। जबकि प्राकृतिक चीज़ों की जाँच-पड़ताल और शोध के बाद ही वे सारी घटनाएँ इंसानों के सामने आने वाली थीं, जिनको वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास कहा जाता है। अनेकेश्वरवाद ने अनेक प्रकार की बेबुनियाद आस्थाओं के तहत इंसानों के बीच ऊँच-नीच की भावना को मज़बूती के साथ क़ायम कर दिया था। इन आस्थाओं के रहते हुए यह असंभव हो गया था कि इंसानी बराबरी का ज़माना शुरू हो सके। इसी प्रकार वे सारी चीज़ें, जिन्हें आज के समय में बौद्धिक जागरूकता और विकास कहा जाता है, इन सभी का अस्तित्व में आना असंभव हो गया था, क्योंकि इन्हें सामने लाने के लिए प्राकृतिक जगत के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी और अंधविश्वासी दृष्टिकोण ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के जन्म को असंभव बना दिया था।

---

[1] ईशदूत; ईश्वर द्वारा नियुक्त व्यक्ति, जिसने ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाया।

पैग़ंबरों के द्वारा किया गया हज़ारों वर्षों का प्रयास यह सिद्ध कर चुका था कि केवल बौद्धिक (intellectual) या धर्म-प्रचार के स्तर तक का प्रयास इंसान को अंधविश्वास के चंगुल से निकालने के लिए काफ़ी नहीं है, क्योंकि उस ज़माने के राजतंत्र भी इन्हीं अंधविश्वासी आस्थाओं की बुनियाद पर खड़े रहते थे। इसलिए शासकों का स्वार्थ और फ़ायदा इसमें था कि अंधविश्वास का युग दुनिया में बाक़ी रहे, ताकि जनता के ऊपर उनकी राजशाही का अधिकार सवाल के अधीन न आ जाए। इसलिए वे अपनी राजनीतिक और सैनिक शक्ति को हर उस धर्म-प्रचार से जुड़े कार्य और प्रयासों के विरुद्ध भरपूर तौर पर प्रयोग करते, जो अनेकेश्वरवाद या अंधविश्वास को समाप्त करने के लिए उठी हो।

अब सवाल यह था कि निजी स्वार्थों की बाधाओं को तोड़ने के लिए कौन-सी रणनीति को अपनाया जाए। यही वह समय है, जबकि छठी सदी ई० में समय के आख़िरी पैग़ंबर (The Final Prophet) हज़रत मुहम्मद दुनिया में आए। ईश्वर ने अपने विशेष निर्णय के तहत आपको 'दाओ'[1] बनाने के साथ-साथ 'माहि' यानी जड़ से मिटाने वाला (eradicator) भी बनाया। आपके ज़िम्मे यह मिशन सौंपा गया कि आप न केवल इस अंधविश्वासी व्यवस्था-प्रणाली के असत्य और ग़लत होने का ऐलान करें, बल्कि इसे हमेशा के लिए समाप्त करने के लिए ज़रूरत पड़ने पर उसके विरुद्ध सैनिक कार्रवाई (military operation) का भी उपाय करें।

क़ुरआन में पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद को संबोधित करते हुए कहा गया है—

"यह किताब हमने तुम्हारे ऊपर इसलिए उतारी है कि तुम लोगों को अँधेरों से निकालकर रोशनी में लाओ।" (14:1)

इंसानों को अँधेरे से निकालकर रोशनी में लाने का यही काम सभी पैग़ंबरों को सौंपा गया था, लेकिन पैग़ंबर-ए-इस्लाम के मामले में एक विशेषता यह है कि आपके लिए ईश्वर ने फ़ैसला किया कि आप केवल संदेश (Divine Message) पहुँचाकर मानवजाति को उसके हाल पर न छोड़ दें, बल्कि कार्रवाई करके उनकी दशा को व्यावहारिक रूप से बदल डालें। इस व्यावहारिक क़दम को सफल बनाने के लिए जिन आवश्यक संसाधनों (resources) की आवश्यकता थी, वह सब ईश्वर ने आपके लिए उपलब्ध कर दिया और यह

---

1 ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाने वाला व्यक्ति।

विश्वास भी दिलाया कि सांसारिक संसाधनों की हर कमी फ़रिश्तों[1] की ख़ास मदद से पूरी की जाएगी।

हदीस[2] में इस बात की चर्चा अलग-अलग अंदाज़ में हुई है। एक हदीस का वाक्य इस प्रकार है—

"मैं मिटाने वाला हूँ, जिसके माध्यम से ईश्वर कुफ़्र[3] (unbelief) को मिटाएगा।"

इस प्रकार पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद सिर्फ़ दाओ न थे, बल्कि इसी के साथ वह माहि भी थे। क़ुरआन में बताया गया है कि पैग़ंबर के मिशन को पूरा करने के लिए सच्चे और भले लोगों के अलावा ईश्वर और फ़रिश्ते तक उनके मददगार हैं। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि ईश्वर को जो नया युग इंसानों के सामने लाना था, उसका आना संभव हो सके।

अनेकेश्वरवाद की ओर

क़ुरआन के अनुसार, धरती पर मानव जाति का आरंभ आदम से हुआ। ईश्वर ने आदम को बता दिया था— "तुम्हारा और तुम्हारी पीढ़ियों का दीन एकेश्वरवाद का दीन होगा। इसी में तुम्हारी दुनिया की भलाई है और इसी में तुम्हारे परलोक की भलाई भी। आरंभ में कुछ दिनों तक लोग सही रास्ते पर चलते रहे। इसके बाद बिगाड़ शुरू हो गया। अब ईश्वर ने पैग़ंबर भेजने का सिलसिला शुरू किया।" (क़ुरआन, 2:213)

मसीह से लगभग तीन हज़ार साल पहले इराक़ में नूह (Noah) पैदा हुए। उन्हें ईश्वर ने पैग़ंबर बनाया और उन्हें लोगों के सुधार का काम सौंपा। उसके बाद से लेकर मरयम के पुत्र मसीह तक लगातार पैग़ंबर आते रहे और लोगों को समझाते रहे, मगर लोग दोबारा सुधार स्वीकार करने को तैयार न हो सके। (क़ुरआन, 23:44)

1 ईश्वर का वह दूत, जो उसकी आज्ञानुसार काम करता है।

2 हज़रत मुहम्मद के कथन, कर्म एवं मार्गदर्शन।

3 ईश्वर का इनकार करना।

इस बिगाड़ का कारण लोगों का किसी भी चीज़ के बाहरी स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी देखने की असमर्थता थी। एकेश्वरवाद का मतलब अनदेखे-अदृश्य ईश्वर की महानता को स्वीकार करना और उसकी इबादत करना है। जब लोग अनदेखे ईश्वर को अपना रब न बना सके तो उन्होंने नज़र आने वाली वस्तुओं और प्राणियों को अपना रब बना लिया। दुनिया के पहले धर्म का स्वरूप एकेश्वरवाद था, लेकिन इसके बाद जो विकृति आई, उसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया अनेकेश्वरवाद की दिशा में चल पड़ी।

एकेश्वरवाद सबसे बड़ी सच्चाई है। इंसान एकेश्वरवाद पर क़ायम रहे तो उसके सारे मामले सही रहते हैं, वह एकेश्वरवाद को छोड़ दे तो उसके सारे मामले बिगड़ जाते हैं। एकेश्वरवाद सारे इंसानों के लिए उनके विकास और पतन का पैमाना है।

क़ुरआन में बताया गया है कि ईश्वर हर चीज़ का बनाने वाला है और वही हर चीज़ का ज़िम्मा लेता है। उसी के पास धरती और आकाश की कुंजियाँ हैं और जिन लोगों ने ईश्वर के संकेतों को नहीं माना, वही लोग घाटे में रहने वाले हैं—

"कहो कि ऐ नादानो, क्या तुम मुझसे यह कहते हो कि मैं ईश्वर के सिवा किसी और की इबादत करूँ और तुम्हारी ओर तथा तुमसे पहले वालों की ओर वह्य[1] भेजी जा चुकी है कि अगर तुमने अनेकेश्वरवाद को माना तो तुम्हारा किया-धरा व्यर्थ हो जाएगा और तुम घाटे में रहोगे। नहीं, बल्कि ईश्वर ही की इबादत करो और शुक्र करने वालों में से बनो।

लोगों ने ईश्वर की क़द्र न की, जैसा कि उसकी क़द्र करने का हक़ है। हालाँकि क़यामत[2] के दिन सारी-की-सारी धरती उसकी मुट्ठी में होगी और आकाश उसके दाएँ हाथ में लिपटे हुए होंगे। वह पवित्र और महान है उससे, जिसे वे साझी ठहराते हैं।"

(39:62-67)

एकेश्वरवाद से हटने का असल नुक़सान वह है, जो मौत के बाद की ज़िंदगी में सामने आने वाला है। चूँकि एकेश्वरवाद संपूर्ण जगत की असल सच्चाई है,

---

[1] ईश्वर का वह संदेश, जो पैग़ंबरों को फ़रिश्ते जिब्रील द्वारा भेजा जाता था।

[2] सृष्टि के अंत और विनाश का दिन।

इसलिए एकेश्वरवाद से हटना पहली और आख़िरी सच्चाई से हटना बन जाता है। और जो लोग इस सच्चाई से हट जाएँ, उनकी ज़िंदगी न सिर्फ़ मौत के बाद की ज़िंदगी में, बल्कि वर्तमान दुनिया में भी बिगड़कर रह जाती है। यही वह बात है, जिसके बारे में क़ुरआन की आयत (39:62-67) में बताया गया है, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

इसका मूल कारण यह है कि एक ईश्वर के बारे में समझ-बूझ और उसका अंतर्ज्ञान व्यक्ति की सहज प्रकृति में गहराई से समाया हुआ है। व्यक्ति स्वयं अपनी स्वाभाविक माँग और अंतःप्रेरणा के कारण विवश है कि वह एक ईश्वर को माने और उसके आगे झुक जाए। व्यक्ति एक ईश्वर को मानने से इनकार कर सकता है, लेकिन यह उसके वश से बाहर है कि वह अपनी सहज प्रकृति का इनकार कर दे। परिणाम यह होता है कि जो लोग सृजनहार को नहीं मानते हैं, उन्हें इसका यह मूल्य चुकाना पड़ता है कि वे सृजनहार की बनाई हुई चीज़ों को मानने पर विवश हों। वे चीज़ों और प्राणियों को वह दर्जा दे देते हैं, जो सही अर्थों में एक सृजनहार यानी एक ईश्वर को देना चाहिए।

इस दुनिया को बनाने वाला और इसका वास्तविक स्वामी ईश्वर है। सारी वास्तविक महानताएँ केवल उसी को प्राप्त हैं। इंसान जब ईश्वर को ही अपना वास्तविक उद्देश्य बनाता है तो वह उस एक हस्ती की महानता को स्वीकार करता है, जो वास्तव में श्रद्धा, सम्मान और भक्ति का अधिकारी है। ईश्वर ही सबसे महान है, इस सच्चाई को समझते हुए इसे स्वीकार करने के उपरांत व्यक्ति आख़िरी और अटल सच्चाई पर खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में उसका जीवन वास्तविक जीवन होता है, जो हर प्रकार के संशय और ग़लत धारणाओं से ख़ाली होता है। उसकी सोच और उसके कार्य, दोनों सही दिशा में चलते हैं। उसका अस्तित्व वास्तविक दुनिया से पूरी तरह एकलय और सुसंगत हो जाता है। उसके और वास्तविक दुनिया के बीच कहीं कोई टकराव नहीं होता।

इसके विपरीत जब इंसान ऐसा करता है कि वह ईश्वर के सिवा किसी चीज़ या व्यक्ति को महानता का वह दर्जा देने लगता है, जो सिर्फ़ एक ईश्वर के लिए ख़ास है तो इसका परिणाम यह होता है कि उसकी संपूर्ण प्रवत्ति (attitude) और दृष्टिकोण झूठा, ख़याली और पाखंडी बन जाता है। वह ऐसी बेजोड़ चीज़ बन जाता है, जो सच्चाई और वास्तविकता की दुनिया

से तालमेल न कर रही हो। उसका पूरा जीवन सच्चाई को मानने के बजाय अटकलों के रास्ते पर चल पड़ता है।

इस मामले को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए— ईसाई लोगों ने त्रिमूर्ति (trinity) की आस्था के तहत मरयम-पुत्र मसीह को ईश्वर मान लिया। मसीह वास्तव में मरयम के पुत्र थे, मगर ईसाइयों ने बढ़ा-चढ़ाकर उन्हें 'ईश्वर का बेटा' का दर्जा दे दिया। उन्होंने मसीह को वह महानता दे दी, जो सिर्फ़ एक ईश्वर के लिए है और जो मसीह सहित संपूर्ण मानव जाति का रचयिता (Creator) है। इसके परिणामस्वरूप वे बहुत सारे विरोधाभास और ग़लत धारणाओं का शिकार हो गए। इन्हीं विरोधाभासों में से एक विरोधाभास वह है, जो सोलर सिस्टम के बारे में उनके धार्मिक मामले से पैदा हुआ ।

प्राचीन खगोल-विज्ञानी (astronomer) टॉलेमी (90-168) यूनान में पैदा हुआ। उसने खगोल-विज्ञान के क्षेत्र में खोज और अध्ययन का काम किया। उसने एक बड़ी और लंबी किताब लैटिन भाषा में लिखी। उसमें उसने यह विचार पेश किया कि पृथ्वी ठहरी हुई है और सूरज, चाँद तथा अन्य सभी ग्रह उसके चारों ओर घूम रहे हैं। उसका ज़माना पहली सदी और दूसरी सदी (90-168) है। ईसाइयों की सरपरस्ती और समर्थन की वजह से यह दृष्टिकोण लगातार लोगों के दिमाग़ पर छाया रहा। 16वीं सदी में कोपरनिकस ने इस विचारधारा को समाप्त किया।

ईसाइयों के यहाँ धर्म का मूल विश्वास मसीह का मानवता के पापों के लिए अपनी जान की बलिदानी है कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित्त), जिसके द्वारा ईश्वर ने संपूर्ण मानवता के मोक्ष (salvation) का प्रबंध किया। मसीह के बलिदान की घटना एक ऐसी मुख्य घटना है, जिसका संबंध न केवल मानव जाति से, बल्कि संपूर्ण जगत से है। संपूर्ण जगत की यह मुख्य घटना 'मसीह का सभी मनुष्यों के पापों के प्रायश्चित्त के लिए सूली पर चढ़ना' चूँकि धरती पर घटी घटना है, इसलिए ईसाई धर्मशास्त्र के अनुसार पृथ्वी को संपूर्ण ब्रह्मांड का सबसे महत्वपूर्ण स्थान और उसका केंद्रबिंदु मान लिया गया। इस आधार पर ईसाइयों ने टॉलेमी के भू-केंद्रीय (geocentric) ब्रह्मांड के नज़रिये का ज़बरदस्त समर्थन किया और इसे धार्मिक आस्था की हैसियत दे दी गई।

ईसाई लोग हर उस कोशिश के विरोधी बने रहे, जो 'सूर्य-केंद्रीय खगोलीय मॉडल' (heliocentric astronomical model) की सोच की ओर ले जाने वाला हो। यहाँ तक कि कोपरनिकस, गैलीलियो और केप्लर की खोज और रिसर्च ने इसे अंतिम रूप में ग़लत सिद्ध कर दिया।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 4, p. 522]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के थीसिस लेखक ने लिखा है कि ईसाई धर्मशास्त्र के अनुसार मोक्ष की योजना एक ब्रह्मांडीय घटना (universal event) थी। मसीह का बलिदान ब्रह्मांडीय महत्व रखता था। इसका संबंध इंसान से लेकर पशुओं तक था, लेकिन आधुनिक खगोल विज्ञान से पता चला कि हमारी पृथ्वी ब्रह्मांड (universe) के विशाल समुद्र में एक छोटे से कंकड़ से ज़्यादा हैसियत नहीं रखती। इस सच्चाई के आधार पर ख़ुद मसीह का महत्व भी किसी हद तक कम हो गया। साथ-ही-साथ मुक्ति और मोक्ष का ईश्वरीय कार्य एक बहुत ही छोटे से ग्रह पृथ्वी पर सिर्फ़ एक छोटी-सी घटना बनकर रह गया।

In view of this fact, the meaning of Christ itself lost some of its impact, and the divine act of salvation appeared merely as a tiny episode within the history of an insignificant little star.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 4, p. 522]

इस दुनिया को बनाने वाला मालिक और योजनाकार सब कुछ सिर्फ़ 'एक ईश्वर' है। हर प्रकार की महानता, सामर्थ्य और शक्ति अकेले उसी को प्राप्त है। उसके सिवा किसी और को किसी भी प्रकार की महानता या सामर्थ्य प्राप्त नहीं। इसलिए इस दुनिया में जब भी किसी और को महानता और पवित्रता की पदवी देने की कोशिश की जाती है तो ऐसा नज़रिया और विचार पूरे ब्रह्मांड से टकरा जाता है, वह इस विशाल ब्रह्मांड में कहीं भी अपना स्थान नहीं पाता।

यही कारण है कि अनेकेश्वरवाद का नज़रिया मानवीय प्रगति की राह में रुकावट बन जाता है और एकेश्वरवाद का नज़रिया इंसान के लिए हर प्रकार की उन्नति का दरवाज़ा खोलने वाला बन जाता है।

इस्लाम का दृष्टिकोण

क़ुरआन से मालूम होता है कि सभी पैग़ंबरों का संदेश सिर्फ़ एक था। उन्होंने हर युग के लोगों से यह कहा कि एक ईश्वर की इबादत करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई इलाह (God) नहीं।

अरबी शब्दकोष 'मफ़रादात' में इमाम राग़िब ने 'इलाह' का अर्थ बताया है— 'हैरान होना' या 'हैरत में पड़ जाना'। अरबी भाषा की सबसे प्रसिद्ध डिक्शनरी 'लिसान अल-अरब' में 'इलाह' शब्द का वास्तविक अर्थ 'हैरान होना' है। यह मन की उस हालत को दर्शाता है, जो ईश्वर की महानता और पवित्रता के अहसास व समझ से बंदे के अंदर पैदा होती है। शब्द अल्लाह (ईश्वर) इसी इलाह से बना है, क्योंकि बुद्धि इसकी कल्पना और विचार से आश्चर्य में पड़ जाती है।

'इलाह' का मतलब वह एक ही हस्ती है, जो आश्चर्य की हद तक महान हो तथा जिसके कमाल और सर्वश्रेष्ठता को सोचकर आदमी आश्चर्य में पड़ जाए। इसी से पवित्रता का विश्वास पैदा होता है। पवित्रता का अर्थ किसी चीज़ का वह रहस्यमय गुण और विशेषता है, जो मानवीय समझ और कल्पना से परे उसे बुलंद और श्रेष्ठ बना देती है। 'इलाह' वह है, जो पूरी तरह से पाक और पवित्र हो, जिसके आगे व्यक्ति अपनी पूरी हस्ती के साथ झुक जाए तथा जो हर प्रकार की कमी और बुराई से दूर हो।

इस अर्थ में केवल एक ईश्वर ही इलाह है। इसके सिवा न कोई इलाह है और न ही किसी भी दर्जे में कोई उसके साथ ख़ुदाई (ईश्वरत्व) में साझीदार या सहभागी है। वास्तविक इलाह को इलाह (ईश्वर) मानना सारी भलाइयों का स्रोत है, जबकि नक़ली और बनावटी इलाह को इलाह मानना सारी बुराइयों की जड़ है।

सभी बुराइयों की जड़

जो पूजनीय नहीं है, उसे पवित्र और पूजनीय मान लेना ही सारी बुराइयों की जड़ है। यही वह चीज़ है, जिसे धर्म की भाषा में अनेकेश्वरवाद कहा जाता है। अनेकेश्वरवाद को क़ुरआन में सबसे बड़ा अन्याय (31:13) कहा गया है। अन्याय का वास्तविक अर्थ है किसी चीज़ को ऐसी जगह रखना, जो उसकी जगह न हो।

अनेकेश्वरवाद सबसे बड़ा अन्याय इसलिए है कि वह इस तरह का सबसे ज़्यादा संगीन और बुरा काम है। वह ऐसी चीज़ों को पूज्य-पवित्र और ईश्वर मान लेता है, जो वास्तव में ईश्वर नहीं है। वह ईश्वर के सिवा किसी चीज़ या किसी व्यक्ति को वह हैसियत दे देता है, जो सिर्फ़ एक ईश्वर के लिए ख़ास है।

इस अन्यायपूर्ण काम का सबसे बड़ा नुक़सान यह है कि आदमी की इबादत का मूल केंद्र बदल जाता है। वह ऐसी हस्तियों को पूजने लगता है, जो इस योग्य नहीं कि उन्हें पूजा जाए। इसका परिणाम यह होता है कि वह ब्रह्मांड में उस एकमात्र सहारे से वंचित हो जाता है, जिसके सिवा आदमी के लिए कोई सहारा नहीं। वह अपने आपको इस योग्य नहीं बना पाता है कि वह ईश्वर की कृपा का अधिकारी बने और जो व्यक्ति ईश्वर की कृपा से वंचित हो जाए, वह हमेशा-हमेशा के लिए वंचित हो गया, क्योंकि किसी और के पास यह शक्ति ही नहीं कि वह किसी व्यक्ति को अपनी कृपा दे सके। यह वह नुक़सान है, जो हमेशा-हमेशा की ज़िंदगी के मामले से संबंधित है, लेकिन वर्तमान दुनिया के अस्थायी जीवन की दृष्टि से भी इसमें नुक़सान के सिवा और कुछ नहीं।

प्राचीन समय में इंसानों ने बहुत-सी चीज़ों को पवित्र और पूजनीय मान लिया था, जो वास्तव में नहीं थीं। इसके परिणामस्वरूप वे लगातार नुक़सान का शिकार होते रहे। इस अनेकेश्वरवादी सोच और विचारधारा ने बहुत सारी विचित्र आस्थाओं को जन्म दिया। यहाँ तक कि मिथकों और अंधविश्वासों की एक पूरी श्रृंखला स्थापित हो गई, जैसे— जब बिजली चमकी तो समझ लिया गया कि यह देवता का जलता हुआ कोड़ा है। चाँद या सूरज ग्रहण पड़ा तो मान लिया गया कि देवता पर कोई मुसीबत का समय आया है इत्यादि।

पवित्रता की यह अनेकेश्वरवादी आस्था धार्मिक गुरुओं के लिए बहुत ही फ़ायदेमंद थी। उन्होंने इसे पूरा दृष्टिकोण बना डाला तथा ईश्वर और इंसानों के बीच बिचौलिया बनकर लोगों को ख़ूब लूटने लगे। उन्होंने लोगों के अंदर यह सोच पैदा की कि धार्मिक गुरुओं को प्रसन्न करना अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को प्रसन्न करना है। इसका सबसे बड़ा फ़ायदा राजाओं को मिला। उन्होंने प्रजा की इस सोच का प्रयोग करते हुए ईश्वरीय राजा (God-King) का दृष्टिकोण बनाया।

राजा के पास किसी समाज में सबसे ज़्यादा शक्ति और धन होता है। वह कई दूसरे मामलों में भी आम लोगों से अलग होता है। इस ख़ास हैसियत से फ़ायदा उठाते हुए राजाओं ने लोगों को विश्वास दिलाया कि वे आम इंसानों से बेहतर और श्रेष्ठ हैं। वे धरती पर ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। किसी ने सिर्फ़ इतना कहा कि वे ईश्वर और बंदों के बीच की कड़ी हैं। किसी ने आगे बढ़कर यह विश्वास दिलाया कि वे ईश्वर का अवतार या उसकी शारीरिक उपस्थिति हैं। वे अलौकिक और दिव्य शक्तियों के मालिक हैं। इस आधार पर प्राचीन समय के राजा अपनी प्रजा पर संपूर्ण अधिकार रखने वाले बन गए।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) की थीसिस में लेखक ने पूजनीय और पवित्र राजशाही (Sacred Kingship) के तहत लिखा है कि एक समय जबकि धर्म हर तरह से आदमी के पूरे जीवन, साथ-ही-साथ सामाजिक जीवन से पूरी तरह जुड़ा हुआ था और जबकि राज्य विभिन्न स्तरों पर धार्मिक शक्तियों या धार्मिक संस्थाओं से जुड़ा हुआ था, उस समय कोई भी राज्य दुनिया में ऐसा न था, जो किसी पहलू से पवित्र और पूजनीय न समझा जाए।

At one time, when religion was totally connected with the whole existence of the individual as well as that of the community and when kingdoms were in varying degrees connected with religious powers or religious institutions, there could be no kingdom that was not some sense sacred.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 16, p. 118]

प्राचीन समय के अनेकेश्वरवाद ने जब शासकों को पूज्य और पवित्रता की हैसियत दी तो उसने एक साथ दो गंभीर बुराइयाँ समाज में पैदा कर दीं। उसने सत्ता और शासन की बुराई को उसकी अंतिम संभव सीमा तक पहुँचा दिया।

जैसा कि इतिहासकार और राजनीतिज्ञ लॉर्ड ऐक्टन (सन् 1834-1902) ने कहा कि सत्ता बिगाड़ती है और पूर्ण सत्ता बिल्कुल बिगाड़ देती है।

Power corrupts and absolute power corrupts absolutely.

इसी के साथ यह कि अब प्रजा के लिए शासक को बदलना संभव न था, क्योंकि जो शासक ईश्वर का प्रतिनिधि हो या ईश्वर का अवतार हो, बल्कि ख़ुद ही ईश्वर हो तो उसके बारे में प्रजा यह सोच ही नहीं सकती थी कि उसे सत्ता से हटाए और इसलिए बढ़े हुए अत्याचार से छुटकारा पाए।

यह राजनीतिक बुराई जिसे बेल्जियन इतिहासकार हेनरी पिरेन ने बेलगाम राजशाही कहा है, हर प्रकार की उन्नति की राह में स्थायी रुकावट बन गई। इस्लाम ने जब प्राचीन साम्राज्यों को तोड़ा, उसके बाद ही यह संभव हुआ कि इंसान के ऊपर हर प्रकार की उन्नति का दरवाज़ा खुले। इस सिलसिले में हेनरी पिरेन की किताब 'हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न यूरोप' का अध्ययन बहुत उपयोगी और जानकारी बढ़ाने वाला है।

हेनरी पिरेन के नज़रिये का सार यह है कि प्राचीन रोमन साम्राज्य जो लाल सागर (Red Sea) के दोनों ओर छाया हुआ था, वह विचार और राय व्यक्त करने की आज़ादी को समाप्त करके मानवीय उन्नति का दरवाज़ा बंद किए हुए था। इस बेलगाम और तानाशाही वाले साम्राज्यवाद को तोड़े बिना इंसानी दिलो-दिमाग़ को आज़ादी नहीं मिल सकती थी और इंसान को जब तक स्वतंत्र और निर्बाध वातावरण में काम करने का अवसर न मिले, तब तक मानव विकास की शुरुआत भी नहीं हो सकती।

लेखक इस सूची में ईरानी राजशाही को भी शामिल करता है। ये दोनों राजशाहियाँ बसे हुए प्राचीन संसार के काफ़ी बड़े हिस्से पर क़ब्ज़ा किए हुए थीं, जो रियासत के सीमित शाही लाभ से संबंधित सोच-विचार के विरुद्ध स्वतंत्र होकर सोचने के अधिकार को पूरी तरह से रद्द किए हुए थीं। यही कारण है कि लंबे शासन के बावजूद ईरानी साम्राज्य के इलाक़े में साइंटिफिक या वैज्ञानिक तरीक़े की सोच-विचार की सही शुरुआत नहीं हो सकी।

खोज और जाँच की आज़ादी

बैरन कारा डी वॉक्स (Baron Carra de Vaux) की प्रसिद्ध पुस्तक 'इस्लाम की विरासत' (*The Legacy of Islam*) वर्ष 1931 में लोगों के सामने आई। इस पुस्तक का लेखक हालाँकि अरबों के कारनामों को स्वीकार करता है, लेकिन उसके निकट उनकी हैसियत इसके सिवा कुछ न थी कि वे यूनानियों के शागिर्द और अनुसरण करने वाले शिष्य (Pupils of the Greeks) थे। बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी किताब 'हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न फ़िलॉसफ़ी' में अरबों को सिर्फ़ हिंसा करने वाले स्रोत का दर्जा दिया है, जिन्होंने यूनान के विचार और ज्ञान को अनुवाद के द्वारा यूरोप की ओर स्थानांतरित कर दिया, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से और जानकारी के आधार पर यह बात दुरुस्त नहीं। यह बात सही है कि अरबों ने यूनानी साहित्य का अध्ययन किया और उससे लाभ भी उठाया, लेकिन इसके बावजूद जो चीज़ वे यूरोप की ओर ले गए, वह उससे बहुत ज़्यादा थी, जो उन्हें यूनान से मिली थी।

सच्चाई यह है कि यूनान के पास वह चीज़ मौजूद ही न थी, जो अरबों के द्वारा यूरोप पहुँची और जो यूरोप में नवजागरण (renaissance) पैदा करने का कारण बनी। अगर वास्तव में यूनान के पास वह चीज़ मौजूद होती तो वह बहुत पहले ही यूरोप को मिल चुकी होती। ऐसी हालत में यूरोप को अपने नवजागरण के लिए एक हज़ार वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

यह एक मालूम सच्चाई है कि प्राचीन यूनान ने जो कुछ प्रगति की थी, वह आर्ट और फ़िलॉसफ़ी में की थी। विज्ञान के क्षेत्र में उनकी प्रगति इतनी कम है कि वह किसी गिनती में नहीं आती। इस मामले में चर्चा के योग्य केवल आर्किमिडीज़ का 'हाईड्रोस्टैटिक्स का सिद्धांत' (Archimedes' hydrostatics) है।

वास्तविकता यह है कि वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल और विज्ञान की प्रगति के लिए मानसिक आज़ादी का माहौल बेहद ज़रूरी है, लेकिन यह माहौल प्राचीन समय के दूसरे देशों की तरह यूनान में भी मौजूद न था। सुकरात (Socrates) को इस अपराध में ज़हर का प्याला पीना पड़ा, क्योंकि वह एथेंस के नौजवानों में

आज़ादी के साथ चिंतन-मनन करने का स्वभाव बना रहा था और आर्किमिडीज़ को 212 ईसा पूर्व में एक रोमन सिपाही ने ठीक उस समय क़त्ल कर दिया, जबकि वह शहर के बाहर रेत पर ज्यामिति (geometary) के सवालों को हल कर रहा था।

(J.M. Roberts, *History of the World*, p. 238)

यूनानी (Greek) इतिहासकार और जीवनी-लेखक प्लूटार्क (46-120 ई०) के अनुसार, स्पार्टा के लोग सिर्फ़ व्यावहारिक और कामचलाऊ ज़रूरतों के लिए पढ़ना-लिखना सीखते थे। उनके यहाँ दूसरी सभी शैक्षणिक प्रभावशाली पुस्तकों और साथ में विद्वानों के उपदेश पर प्रतिबंध लगा हुआ था।

(Plutarch, *The Ancient Customs of the Spartans*)

लोकतांत्रिक एथेंस में आर्ट और फ़िलॉसफ़ी को तरक़्क़ी हासिल हुई, लेकिन बहुत से आर्टिस्ट और फ़िलॉस्फर को देश-निकाला दे दिया गया, क़ैदख़ानों में डाल दिया गया, फाँसी पर चढ़ा दिया गया या वे डर से भाग गए। इनमें इस्किलस, यूरीपिदीज, फ़िडीयास, सुकरात और अरस्तू (Aristotle) जैसे लोग भी शामिल थे। इस्किलस का क़त्ल जिस बुनियाद पर किया गया, वह इस बात का सबूत है कि प्राचीन यूनान में विज्ञान की प्रगति का वातावरण मौजूद न था। उसे इसलिए क़त्ल किया गया कि उसने एलुसिनियन रहस्यों की गोपनीयता (Eleusinian Mysteries) को उजागर कर दिया था। ये 'रहस्य' उन अनगिनत अजूबों से भरी कहानियों में से हैं, जिनका सच्चाई से कोई संबंध नहीं। फिर भी वह यूनानी सोच-विचार का अवश्यक अंग बने हुए थे।

(*Encyclopaedia Britannica,* 3/1084)

आधुनिक वैज्ञानिक युग से पहले विज्ञान के मामले में यूरोप की क्या स्थिति थी, इसका एक उदाहरण सिलवेस्टर (Pope Sylvester-II) का क़िस्सा है, जो आम तौर पर 'गरबर्ट' के नाम से मशहूर है। वह वर्ष 945 ई० में फ़्रांस में पैदा हुआ और वर्ष 1003 ई० में उसकी मौत हुई। वह यूनानी और लैटिन, दोनों भाषाएँ भली-भाँति जानता था और बहुत ही योग्य व्यक्ति था। उसने स्पेन की यात्रा की और बार्सिलोना में तीन साल तक रहा। उसने अरबों के ज्ञान-विज्ञान सीखे और उनसे बहुत प्रभावित हुआ। वह स्पेन से वापस लौटा तो उसके साथ कई अरबी किताबों के अनुवाद थे। वह अपने साथ एक नक्षत्र-यंत्र

(constellation machine) भी स्पेन से लाया था। उसने अरबों के विज्ञान, तर्कशास्त्र (logic), गणित और खगोल-विज्ञान आदि की शिक्षा देने का काम शुरू किया, लेकिन उसे भारी विरोध का सामना करना पड़ा। कुछ ईसाइयों ने कहा कि यह स्पेन से जादू सीखकर आया है। कुछ लोगों ने कहा कि इस पर शैतान हावी हो गया है। वह इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में रहा, यहाँ तक कि 12 मई, 1003 को रोम में उसकी मौत हो गई।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 17, p. 899]

इस्लाम से पहले संपूर्ण ज्ञात इतिहास में बौद्धिक और मानसिक आज़ादी का विचार और इस जैसी आज़ादी की समझ मौजूद नहीं थी। यही कारण है कि प्राचीन समय में विज्ञान से संबंधित सोच-विचार और चिंतन के कुछ निजी और व्यक्तिगत उदाहरण ही मिलते हैं, लेकिन इस तरह का सोच-विचार अस्थायी या निजी घटना से आगे न बढ़ सका। बौद्धिक और मानसिक आज़ादी नहीं मिलने के कारण ऐसी हर सोच पैदा होकर समाप्त होती रही।

इस्लाम ने पहली बार यह क्रांतिकारी परिवर्तन किया कि धार्मिक ज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान को एक-दूसरे से अलग कर दिया। धार्मिक ज्ञान का स्रोत वह्य (Divine Revelation) को माना गया, जिसका प्रामाणिक और विशुद्ध रूप हमारे पास क़ुरआन के रूप में सुरक्षित है, लेकिन प्राकृतिक घटनाओं की जाँच के लिए पूरी आज़ादी दे दी गई कि इंसान स्वतंत्र रूप से उनमें जाँच-पड़ताल करे और अपने नतीजों तक पहुँच सके।

'हदीस' की दूसरी सबसे भरोसेमंद किताब 'सही मुस्लिम' में एक अध्याय का शीर्षक इन शब्दों में लिखा गया है— हज़रत मुहम्मद ने जो कुछ धर्म के संबंध में कहा, उसका मानना अनिवार्य है, मगर दुनियादारी के मामलों के बारे में आपका कथन इससे आज़ाद है।

इस अध्याय के तहत इमाम मुस्लिम ने एक घटना का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

"मूसा इब्ने-तल्हा अपने पिता से नक़ल करते हैं कि मैं हज़रत मुहम्मद के साथ ऐसे लोगों के पास से गुज़रा, जो ख़जूर के पेड़ पर चढ़े हुए थे। आपने पूछा कि ये लोग क्या कर रहे हैं। लोगों ने बताया कि वे पराग छिड़कने का काम (pollination) कर रहे हैं अर्थात् नर को मादा पर मार रहे हैं तो इससे वह

उपजाऊ और फलदायक होता है। हज़रत मुहम्मद ने कहा, ‘मुझे नहीं लगता कि इससे उन्हें कुछ फ़ायदा होगा।’ यह बात लोगों को बताई गई तो उन्होंने पराग छिड़कने का काम छोड़ दिया। हज़रत मुहम्मद को यह बात मालूम हुई तो आपने कहा, ‘अगर इससे उनको फ़ायदा होता हो तो वे ऐसा कर सकते हैं, क्योंकि मैंने केवल एक अनुमान लगाया था तो तुम मेरे अनुमान का अनुपालन न करो, लेकिन जब मैं तुमसे ईश्वर की कोई बात कहूँ तो तुम उसका पालन करो, क्योंकि मैं ईश्वर के बारे में कभी झूठ नहीं कहता।’ ”

हज़रत मुहम्मद की पत्नी आयशा और आपके साथी साबित और अनस ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है कि हज़रत मुहम्मद एक गिरोह के पास से गुज़रे, जो पराग छिड़कने का काम कर रहे थे। आपने कहा, “अगर वे ऐसा न करते तो ज़्यादा बेहतर था।” बयान करने वाले कहते हैं कि उसके बाद ख़जूर की पैदावार बहुत कम हुई। आप दोबारा उनके पास से गुज़रे और पूछा कि तुम्हारी ख़जूरों का क्या हुआ तो उन्होंने पूरा क़िस्सा बताया। आपने कहा, “तुम अपने तरीक़े के अनुसार काम करो, क्योंकि तुम अपनी दुनिया के बारे में ज़्यादा जानते हो।”

इस हदीस के अनुसार, इस्लाम में धार्मिक मामलों को विज्ञान के खोज-कार्यों से अलग कर दिया गया है। धार्मिक मामलों में ईशवाणी (Divine Revelation) के मार्गदर्शन की पूरी पाबंदी करनी है, लेकिन विज्ञान के खोज-कार्य को मानवीय परीक्षण की बुनियाद पर चलाना है। यह विज्ञान के इतिहास में निःसंदेह सबसे बड़ी क्रांति है।

अरब-प्रभाव

यह सही है कि प्राचीन समय में अलग-अलग देशों में कुछ व्यक्ति पैदा हुए, जिन्होंने व्यक्तिगत तौर पर विज्ञान के कुछ कारनामे अंजाम दिए, लेकिन माहौल के नकारात्मक हालात और समर्थन की कमी के कारण उन्हें न तो अपने देश में अधिक शोहरत मिली और न ही अपने देश के बाहर।

एक फ्रांसीसी इतिहासकार मोसोलेबन ने अपनी किताब 'अरब सिविलाइज़ेशन' में लिखा है कि प्राचीन समय में बहुत से समुदायों ने सत्ता प्राप्त की। ईरान, यूनान और रोम ने अलग-अलग समय में पूर्वी देशों पर शासन किया, लेकिन उन देशों पर उनका सांस्कृतिक प्रभाव बहुत कम पड़ा। उन समुदायों में वे न तो अपने धर्म का प्रसार कर सके, न अपनी भाषा, न अपने ज्ञान और न ही व्यापार-व्यवसाय को बढ़ावा दे सके।

मिस्र रोमन शासन के समय में न केवल अपने धर्म पर दृढ रहा, बल्कि स्वयं विजेताओं ने परास्त लोगों का धर्म और उनकी वास्तुकला (architecture) को अपना लिया। इसलिए उस दौर में उन दोनों ख़ानदानों ने जो इमारतें बनाईं, वह फ़िरऔन द्वारा विकसित वास्तुकला पर आधारित थीं, लेकिन जो उद्देश्य यूनानी, पर्शियन और रोमन मिस्र में हासिल न कर सके, उस उद्देश्य को अरबों ने बहुत जल्द और बिना किसी बल-प्रयोग के हासिल कर लिया।

मिस्र, जिसके लिए किसी ग़ैर-समुदाय के विचारों को स्वीकार करना बहुत मुश्किल था, उसने एक सदी के अंदर अपनी सात हज़ार साल पुरानी संस्कृति को छोड़कर एक नया धर्म और एक नई भाषा अपना ली। अरबों ने यही प्रभाव अफ़्रीक़ी देशों, सीरिया और ईरान वग़ैरह पर भी डाला। इन सबमें तेज़ी के साथ इस्लाम फैल गया। यहाँ तक कि जिन देशों से अरब सिर्फ़ गुज़र गए, जहाँ कभी उनका शासन स्थापित नहीं हुआ और जहाँ वे केवल व्यापारी की हैसियत से आए थे, वहाँ भी इस्लाम फैल गया, जैसे चीन आदि।

दुनिया के इतिहास में पराजित समुदायों पर किसी विजेता समुदाय के प्रभाव का ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। उन सभी समुदायों ने जिनका अरबों से केवल कुछ दिनों का संबंध बना, उन्होंने भी उनकी संस्कृति और सभ्यता को स्वीकार कर लिया और भी आश्चर्य की बात यह है कि कई विजेता समुदायों ने भी, जैसे तुर्क और मंगोलों ने मुसलमानों को पराजित करने के बाद न केवल उनका धर्म और संस्कृति को अपना लिया, बल्कि उसके बहुत बड़े समर्थक बन गए। आज भी जबकि सदियों से अरबी सभ्यता और संस्कृति की आत्मा मुर्दा हो चुकी है, अटलांटिक महासागर से लेकर सिंधु नदी तक और भूमध्य सागर (Mediterranian Sea) से लेकर अफ़्रीक़ा के रेगिस्तान तक एक धर्म और एक भाषा प्रचलित है और वह है पैग़ंबर-ए-इस्लाम का धर्म और उनकी भाषा।

(Moseoleban, *The Arab Civilization*)

मोसोलेबन ने आगे लिखा है कि पश्चिमी देशों पर भी अरबों का उतना ही प्रभाव हुआ, जितना प्रभाव पूर्वी देशों पर हुआ था। इसी की बदौलत पश्चिमी लोगों ने सभ्यता सीखी। केवल इतना अंतर है कि पूर्वी देशों में अरबों का प्रभाव उनके धर्म, भाषा और ज्ञान-विज्ञान से लेकर कला और व्यापार-व्यवसाय, हर चीज़ पर पड़ा। और पश्चिम में यह हुआ कि उनके धर्म पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। व्यापार-व्यवसाय पर अपेक्षाकृत कम और ज्ञान-विज्ञान तथा कला पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

अरबों के द्वारा एकेश्वरवादी धर्म और उसके प्रभाव के तहत पैदा होने वाली सभ्यता चारों ओर फैली। उसने पुराने समय की आबाद दुनिया के अधिकतर हिस्सों को प्रभावित किया। इस प्रकार वह वातावरण तैयार हुआ, जिसमें प्राकृतिक चीज़ों और प्राकृतिक घटनाओं की जाँच-पड़ताल और शोध का काम स्वतंत्र रूप में हो सके।

आधुनिकता के चार युग

क़ुरआन में लगभग एक दर्जन जगहों पर यह बात कही गई है कि इस्लाम के रूप में जो दीन भेजा गया है, वह धार्मिक अर्थों में सभी लोगों के लिए मार्गदर्शन का स्रोत है, साथ ही कई दूसरे अर्थों में एक वरदान भी है। (6:157)

मार्गदर्शन उसका धार्मिक पहलू है और सांसारिक पहलू उसका वरदान है। इस्लाम के द्वारा एक ओर यह हुआ कि इंसान को सच्चा और विशुद्ध धर्म मिला। इंसान और ईश्वर के बीच संबंध स्थापित करने के लिए जो बनावटी रुकावटें आड़े आ रही थीं, वह सब हमेशा के लिए समाप्त कर दी गईं। क़ुरआन और सुन्नत[1] के रूप में मार्गदर्शन की एक स्थायी मीनार खड़ी कर दी गई, जिससे हर दौर का व्यक्ति रोशनी हासिल करता रहे।

इसी के साथ दूसरी, बल्कि दूसरे दर्जे की बात यह हुई कि इस्लाम के द्वारा एक ऐसी क्रांति पैदा हुई, जिसने इंसान के ऊपर सांसारिक वरदानों और फ़ायदों

---

[1] तरीक़ा, पद्धति; वह काम जो हज़रत मुहम्मद ने किया हो।

का दरवाज़ा खोला। उसने इंसानी इतिहास को अंधकार के दौर से निकालकर रोशनी के दौर में दाख़िल कर दिया। इस्लामी क्रांति का यही दूसरा पहलू है, जिसे प्रसिद्ध पश्चिमी इतिहासकार हेनरी पिरेन ने इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"इस्लाम ने दुनिया का चेहरा बदल डाला। इतिहास के पुराने रीति-रिवाज वाले ढाँचे को उखाड़कर फेंक दिया गया।"

Islam changed the face of the globe. The traditional order of history was overthrown.

(*History of Western Europe,* p. 46)

वर्तमान समय जिसे विकसित और आधुनिक युग कहा जाता है— साइंस और इंडस्ट्री का युग, आज़ादी और समानता का युग आदि, वह पूरी तरह से इस्लामी क्रांति के उस पहलू का सीधा परिणाम है, जिसे क़ुरआन में 'रहमत' (blessing) कहा गया है। यह दौर दूसरी सभी ब्रह्मांडीय घटनाओं की तरह श्रृंखलाबद्ध ढंग से अस्तित्व में आया और लगभग एक हज़ार साल में अपनी इस ऊँचाई को पहुँचा। इस श्रृंखलाबद्ध विकास को अगर युगों और चरणों में बाँटा जाए तो मोटे तौर पर इसे चार चरणों में बाँटा जा सकता है। इनमें से प्रारंभिक तीन युग सीधे इस्लामी क्रांति से जुड़े हुए युगों की हैसियत रखते हैं और चौथा युग अप्रत्यक्ष रूप से इस्लामी क्रांति से जुड़ा युग है—

1. पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद का युग— 610-632 ई०
2. नेक और धर्मपरायण ख़लीफ़ा-ए-राशिदीन का युग— 632-661 ई०
3. बनू-उमय्या और बनू-अब्बास का युग— 661-1492 ई० (स्पेन तक)
4. यूरोप की आधुनिक क्रांति, जो सलीबी जंगों (crusades) के बाद मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव से 15वीं सदी ई० में शुरू हुई।

आधुनिक इंसान

वर्तमान सदी के प्रारंभ तक सभ्य दुनिया (civilized world) में आम तौर पर यह समझा जाता था कि विकास का राज़ साधारण तौर पर यह है कि मानव जाति को पुराने रीति-रिवाज से आधुनिकता तक पहुँचा दिया जाए,

लेकिन इस यात्रा के अंतिम दौर में पहुँचकर इंसान दोबारा निराशा का शिकार हुआ है। उसे महसूस हो रहा है कि इंसान के वास्तविक विकास के लिए इससे ज़्यादा गहरी बुनियाद की ज़रूरत है। इसलिए अब अक्सर ऐसे लेख प्रकाशित हो रहे हैं, जिनका शीर्षक उदहारण के लिए इस तरह का होता है— Shallow are the roots.

अब ख़ुद पश्चिमी दुनिया में यह बात लेखकों की क़लम का विषय बन रही है। उनमें से एक किताब प्रोफ़ेसर विलियम कोनोली की है, जो वर्ष 1988 में छपकर सामने आई—

Political Theory and Modernity, Black Well, London, 1988)

प्रोफ़ेसर कोनोली कहते हैं—

आधुनिकतावाद (modernism) की पूरी योजना अपनी शानदार सफलताओं के बावजूद बहुत ज़्यादा समस्याओं से घिरी हुए है। इसका कारण यह है कि शुरुआत से ही ईश्वर को हटाने के बाद उसकी जगह को पूरा करने के सभी प्रयास चाहे वह दलील से, लोगों की राय से या इतिहास की तार्किक बहस के द्वारा हों, सब-के-सब बेफ़ायदा साबित हुए हैं। उनमें से हर एक किसी-न-किसी प्रकार निषेधवाद पर जाकर समाप्त हुए हैं।

The whole project of modernity, despite its stunning success, is highly problematic. This is because all attempts to fill the place which God was forced to vacate at the start of the project—with reason, with the general will, the dialectic of history—have been of no avail, and each has ended up in one kind of nihilism or another.

(*The Encyclopaedia Britannica,* Vol. 15, p. 646)

इस्लाम से पहले का समय अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास के वर्चस्व का समय था। उस ज़माने में लोगों की मानसिकता पर अनेकेश्वरवादी सोच छाई हुई थी। सृष्टि और प्राणियों ने सृष्टिकर्ता (Creator) का स्थान प्राप्त कर लिया था। इंसान अनगिनत भगवानों का भक्त और प्रशंसक बना हुआ था। इसके

परिणामस्वरूप इंसान की पूरी सोच बिगड़ गई और उसके ऊपर हर तरह के विकास का दरवाज़ा बंद हो गया।

इसके बाद इस्लाम का आगमन हुआ। इस्लाम का वास्तविक लक्ष्य यह था कि अनेकेश्वरवाद के वर्चस्व को समाप्त करके एकेश्वरवाद को प्रभावी हैसियत दी जाए।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम और आपके साथियों के बड़े बलिदानों के परिणामस्वरूप अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास का वर्चस्व हमेशा के लिए समाप्त हो गया और एकेश्वरवाद का वर्चस्व स्थापित हो गया। यह क्रांति इतनी प्रभावशाली, दूरगामी और महत्वपूर्ण परिणाम वाली थी कि इतिहास में पहली बार अनेकेश्वरवाद का युग समाप्त हो गया और उसके बजाय एकेश्वरवाद के युग की शुरुआत हुई। यह एकेश्वरवाद का युग लगभग एक हज़ार साल तक अपनी पूरी शक्ति और दृढ़ता के साथ जारी रहा। उसके बाद आधुनिक औद्योगिक सभ्यता (modern industrial civilization) की शुरुआत हुई। यह सभ्यता सबसे पहले इस्लामी क्रांति के प्रभाव से पश्चिमी यूरोप में पैदा हुई। उसके बाद इसका प्रभाव सारी दुनिया में फैल गया। इस सभ्यता का जो हिस्सा बुरा है, वह इंसान की अपनी मिलावट है और इसका जो हिस्सा बेहतर है, वह इस्लामी क्रांति के प्रभाव का जारी रहना है।

प्रगति के पथ पर

मसीह के आगमन से पहले दुनिया में मानवीय सभ्यता के चार मुख्य केंद्र थे — ईरान, चीन, हिंदुस्तान और यूनान। अब्बासी वंश के ख़लीफ़ा[1] अल-मंसूर ने 762 ई० में बग़दाद शहर को आबाद किया। उन्होंने कई अलग-अलग क्षेत्रों के धार्मिक विद्वानों और बुद्धिजीवियों को एकत्र किया और दूसरी भाषाओं से अरबी भाषा में पुस्तकों के अनुवाद के लिए उन्हें प्रेरित किया तथा उनकी हौसला-अफ़ज़ाई की।

---

[1] पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारी का पद।

राज्य के संरक्षण और देख-रेख में यह काम शुरू हो गया। 832 ई० में ख़लीफ़ा अल-मामून ने बग़दाद में प्रसिद्ध बैत-अल-हिकमा (House of Wisdom) की बुनियाद रखी, जिसमें लाइब्रेरी, रिसर्च या शोध संस्थान, अनुवाद विभाग और खगोलीय वेधशाला (astronomical observatory) थी। यहाँ दूसरी भाषाओं से अरबी भाषा में अनुवाद का काम इतने बड़े पैमाने पर और इतनी तेज़ी के साथ शुरू हुआ कि बग़दाद की स्थापना के 80 साल के अंदर यूनानी पुस्तकों का एक बड़ा हिस्सा अरबी भाषा में आ गया।

अब्बासी दौर में काग़ज़-निर्माण का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाने लगा था। पुस्तकें लिखने के लिए काग़ज़ की कोई कमी नहीं थी, इसलिए बड़ी संख्या में पुस्तकें लिखी जाने लगीं। 10वीं सदी में क़र्तबा (Cordoba, Spain) के पुस्तकालय में चार लाख से ज़्यादा पुस्तकें मौजूद थीं। उस युग में यूरोप का यह हाल था कि कैथोलिक एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, कैंटबरी (Canterbury) की लाइब्रेरी 13वीं सदी में अपनी 1,800 पुस्तकों के साथ ईसाई लाइब्रेरियों की सूची में प्रथम स्थान पर थी।

9वीं सदी की शुरुआत में भू-गणितीय (geodetic) क्षेत्र में ख़लीफ़ा अल-मामून के खगोलविदों ने टेरेस्ट्रियल डिग्री (terrestrial degree) की लंबाई को मापने के एक बड़े काम को अंजाम दिया, जो उनके कई बेहतरीन कामों में से एक है। एक टेरेस्ट्रियल डिग्री भूमि पर वह लंबाई है, जो आकाश में एक डिग्री के आर्क (arc) से मिलती है। इस काम का उद्देश्य पृथ्वी के आकार और इसकी परिधि (circumference) का पता लगाना था। इस अनुमान के आधार पर कि पृथ्वी गोल है।

पैमाइश का काम सिंजर के मैदान (मौजूदा इराक़), फ़रात नदी के उत्तर और सीरियाई नगर पल्मीरा के नज़दीक किया गया। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने पृथ्वी के आकार का हिसाब लगाया कि पृथ्वी की परिधि 20,400 मील और व्यास (diameter) 6,500 मील है। यह सटीकता बहुत आश्चर्यजनक है। इस कार्य में अल-ख़्वारिज़मी (780-850 ई०) और मूसा इब्न शाकिर के बेटों (9वीं सदी ई०) ने हिस्सा लिया था। इनके द्वारा तैयार माप-तालिका को डेढ़ सौ साल बाद स्पेन के मसलमाह अल-मजरिती ने संशोधित किया और 1126 ई० में बाथ के एदेलार्ड ने इसे लैटिन भाषा में अनूदित (translate) किया, जो बाद

के कार्यों के लिए सारी दुनिया में बुनियाद बन गया। अल-इदरीसी की भी उपलब्धि कुछ कम नहीं थी, जिन्होंने 12वीं सदी की शुरुआत में दुनिया का एक नक़्शा बनाया, जिसमें उन्होंने नील नदी के स्रोत को भी दिखाया, जिसे यूरोपियन कहीं 19वीं सदी में जाकर खोज सके।

इस्लामी दुनिया में यह गतिविधियाँ ऐसे युग में जारी थीं, जबकि सारा यूरोप ज़मीन के चपटे होने का विश्वास करता था। मुसलमानों ने पूरे यूरोप को ज़मीन के गोल होने की धारणा और ज्वार-भाटा के कारणों से लगभग सही नज़रिये से परिचित कराया।

टॉलेमी दूसरी सदी ई० का प्रसिद्ध यूनानी खगोलशास्त्री (astronomer) है। उन्होंने सौरमंडल का भू-केंद्रीय (geocentric) दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। इस विषय पर उनकी पुस्तक अल-मैजेस्ट (Almajest) बहुत प्रसिद्ध है। टॉलेमी का यह दृष्टिकोण लगभग डेढ़ हज़ार साल तक लोगों के दिमाग़ों पर छाया रहा। यहाँ तक कि 16वीं सदी ई० में कोपरनिकस, गैलीलियो और केप्लर की खोजों ने अंतिम रूप में उनको ग़लत सिद्ध कर दिया। अब सारी दुनिया में कोई उनका मानने वाला नहीं।

पृथ्वी की परिक्रमा के बारे में इस ग़लत दृष्टिकोण के इतने लंबे समय तक प्रभावी रहने का कारण दरअसल अपूज्य को पूज्य और पवित्र बनाने की ग़लती थी। ईसाइयों का यह विश्वास था कि धरती एक पवित्र ग्रह है, क्योंकि वह ईश्वर के बेटे मसीह की जन्मभूमि है। इस आधार पर यह बात उन्हें अपनी काल्पनिक आस्था के अनुसार ठीक नज़र आई कि पृथ्वी केंद्र है और सारा सौरमंडल उसके चारों ओर घूम रहा है। पृथ्वी की पवित्रता का यह दृष्टिकोण ईसाइयों के लिए इसमें अड़चन बन गया कि वे इसकी आगे की छानबीन करें। वे उस समय तक इस पर दृढ़ रहे, जब तक कि वास्तविकता के तूफ़ान ने उन्हें मानने के लिए विवश न कर दिया।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने लिखा है—

प्राचीन ब्रह्मांड विज्ञान के अनुसार पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र थी। इंसान धरती का सबसे उन्नत प्राणी था और मसीह का बलिदान संपूर्ण धरती व आसमान की सबसे अधिक बड़ी और मुख्य घटना थी। यह खोज कि धरती बहुत से ग्रहों में से एक ग्रह है, जो कि सूरज के गिर्द घूम रहा है और यह कि सूरज

ब्रह्मांड की अनगिनत आकाशगंगाओं (galaxies) में सिर्फ़ एक मामूली सितारा है, उसने इंसान के पुराने ईसाई दृष्टिकोण को हिला दिया। पृथ्वी ब्रह्मांड के विशाल विस्तार की तुलना में केवल एक छोटा-सा बिंदु नज़र आने लगी। न्यूटन और दूसरे वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न की खोज शुरू की कि इंसान, जो कण का भी कण है, क्योंकर यह दावा कर सकता है कि उसे यह पवित्र हैसियत हासिल है कि वह और उसकी प्रतिष्ठा ईश्वरीय योजना का सबसे बड़ा लक्ष्य और उद्देश्य है।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 4, p. 522]

ईसाइयों ने मसीह को ईश्वरत्व (Holy Trinity) का एक हिस्सा मान लिया और यह काल्पनिक विचार बनाया कि मानवीय पापों के प्रायश्चित्त के लिए ईश्वर के बेटे का सलीब पर चढ़ना इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना है, जो धरती पर घटित हुई। इस तरह पृथ्वी उनकी मान्यताओं के ढाँचे में एक पवित्र हैसियत हासिल कर गई। वे हर ऐसी सोच के कट्टर विरोधी हो गए, जिसमें धरती की केंद्रीय प्रतिष्ठा समाप्त होती हो। ईसाइयों की यह आस्था उनके लिए सौरमंडल की स्वतंत्रतापूर्वक जाँच-पड़ताल के रास्ते में ररुकावट बन गई।

इस तरह अपूज्य को पूज्य और पवित्र बनाना प्राचीन समय हर प्रकार के विकास का दरवाज़ा बंद किए हुए था। चाँद को पूज्य-पवित्र बनाना इसमें अड़चन था कि इंसान उसके ऊपर अपना पाँव रखने की बात सोच सके। नदी को पवित्र और पूज्य समझना इसमें रुकावट बन गया कि इंसान नदी को अधीन करके उससे बिजली पैदा करने की योजनाएँ बनाए। इस प्रकार की सभी खोजों का काम केवल उस समय शुरू हो सका, जबकि प्रकृति को श्रद्धा और दिव्य के पद से हटाया गया और उसे उस सतह पर लाया गया, जहाँ इंसान उनको एक आम चीज़ की हैसियत से देख सके।

इस्लाम से पहले सितारों को केवल पूजनीय समझा जाता था। इस्लामी क्रांति के बाद पहली बार बड़े पैमाने पर इंसान ने वेधशालाओं (observatories) का निर्माण किया और सितारों को अध्ययन और जाँच का विषय बनाया।

धरती से प्राप्त खनिज पदार्थों को अब तक श्रद्धा और पवित्रता की नज़र से देखा जाता था। इस बात के लिए पूरी पृथ्वी को देवता माना जाता था (यह भी सोचा जाता था कि आसमान देवता है और धरती देवी)। इस्लाम ने रासायनिक

विज्ञान को विकसित कर पहली बार खनिज पदार्थों को जाँच और विश्लेषण का विषय बनाया और मुसलमानों ने ही पहली बार धरती की माप करके इसका वज़न आदि मालूम किया।

समुद्र को इंसान अब तक केवल पूजने की चीज़ समझता था, मुसलमानों ने पहली बार इसे बहुत बड़े पैमाने पर जल-मार्ग के रूप में प्रयोग किया और वे इस कार्य के अग्रदूत (forerunners) बने। तूफ़ान और हवा को इंसान रहस्यमय, डर और श्रद्धा की चीज़ समझकर पूजता था, मुसलमानों ने हवा-चक्की (air mill) के द्वारा इसकी शक्ति को मानवीय प्रयोग में बदलना शुरू कर दिया।

वृक्षों से रहस्यमय कहानियाँ जोड़कर उन्हें उपासना और पूजा के योग्य समझा जाता था। मुसलमानों ने उन पर खोज और अनुसंधान का काम शुरू किया, यहाँ तक कि उन्होने हर्बल और वनस्पति विज्ञान की ज्ञान-सूची में कुल दो हज़ार पौधों को जोड़कर उसे समृद्ध किया।

जिन नदियों को लोग पवित्र और पूजनीय समझते थे और उन्हें ख़ुश करने के लिए अपने लड़कों और लड़कियों को ज़िंदा हालत में उनके अंदर डाल देते थे, मुसलमानों ने उन नदियों से नहरें काटकर सिंचाई के लिए प्रयोग किया और खेती के काम को बिल्कुल नए दौर में प्रविष्ट कर दिया।

उस युग में मुसलमान दूसरी जातियों से इतना ज़्यादा आगे थे कि वे जब स्पेन से बाहर निकाले गए तो उन्होंने वहाँ वेधशालाएँ छोड़ीं, जिनके द्वारा वे खगोलीय पिंडों (celestial bodies) का अध्ययन किया करते थे। उन छोड़ी हुई वेधशालाओं का प्रयोग स्पेन के ईसाई नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें चर्च के क्लॉक टॉवर यानी घंटाघर में बदल दिया।

यह एक बड़ी सच्चाई है कि प्राचीन समय में सारी दुनिया में अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास का वर्चस्व था और यह भी सच्चाई है कि यही अनेकेश्वरवाद हर प्रकार के विकास की राह में रुकावट बना हुआ था। इस्लाम के द्वारा एकेश्वरवाद की जो क्रांति आई, उसने इतिहास में पहली बार अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास के वर्चस्व को लगभग पूरी तरह से समाप्त कर दिया। इसके बाद ठीक उसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप मानवीय इतिहास का समूह विकास के रास्ते पर चल पड़ा।

प्राचीन युग में कुछ देशों में रचनात्मक सोच वाले कुछ लोग पैदा हुए। उन्होंने माहौल से अलग होकर सोचा, मगर माहौल के विरोध और असहयोग के कारण उनकी कोशिशें आगे न बढ़ सकीं। उनकी पहल और उनकी कोशिशों को प्रयोग में नहीं लाया जा सका। उनके ज्ञान की कली फूल बनने से पहले अपनी शाख़ (टहनी) पर मुरझाकर रह गई। इस्लामी क्रांति ने जब उसके अनुकूल और मददगार माहौल पैदा किया तो ज्ञान का वह शक्तिशाली सैलाब पूरी तेज़ी से बह पड़ा, जो हज़ारों साल से अंधविश्वास के बाँध के पीछे रुका हुआ था।

ज्ञान और इस्लाम

सिकंदर-ए-आज़म के बाद टॉलेमी द्वितीय (Ptolemy-II) मिस्र के इलाक़े का शासक हुआ। उसका युग तीसरी सदी ईसा पूर्व है। वह ज्ञान का आदर करने वाला था। उसने एलेक्जेंड्रिया में एक पुस्तकालय बनवाया, जिसमें विभिन्न विषयों पर लगभग पाँच लाख पुस्तकें थीं। यही वह पुस्तकालय है, जो इतिहास में एलेक्जेंड्रिया के महान पुस्तकालय (The great library of Alexandria) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तकालय बाद में (इस्लामी दौर से पहले) नष्ट कर दिया गया।

इस पुस्तकालय के बारे में यह ग़लत आरोप लगाया जाता है कि दूसरे ख़लीफा हज़रत उमर फ़ारूक़ के आदेश से इसे जलाया गया। हालाँकि इस्लाम के आगमन से बहुत पहले चौथी सदी में ही इसे नष्ट कर दिया गया था। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने लिखा है कि वह रोमन शासन के दौरान तीसरी सदी तक मौजूद था, उसके बाद वह शेष न रहा।

"The library survived the disintegration of Alexander's empire (1st century B.C.) and continued to exist under Roman rule until the third century A.D..."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 1, p. 227]

सच्चाई यह है कि इस पुस्तकालय का आधा हिस्सा जूलियस सीज़र ने 47 ईसा पूर्व में जलाया। तीसरी सदी में ईसाइयों का इस क्षेत्र में वर्चस्व स्थापित हुआ। उस दौरान 391 ई० में ईसाइयों ने उसे जलाकर अंतिम रूप से उसे समाप्त

कर दिया। इस बात को एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका (Encyclopaedia Britannica) ने इन शब्दों में लिखा है—

"The main museum and library were destroyed during the civil war of the third century A.D; and a subsidiary library was burned by Christians in A.D. 391."

[Encyclopaedia Britannica (1984), Vol. 1, p. 479]

दो जगहों पर इस घटना को साफ़ तौर पर स्वीकार करने के बावजूद इसी एनसाइक्लोपीडिया में तीसरी जगह पर अनावश्यक रूप से या ग़लती से पुस्तकालय की बरबादी को मुस्लिम शासनकाल के साथ जोड़ दिया गया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में सेंसरशिप (वैचारिक नियंत्रण) के शोधलेख के तहत यह बात दर्ज है—

इस बात के विभिन्न सबूत मौजूद हैं कि एलेक्जेंड्रिया के पुस्तकालय को कई चरणों में जलाया गया। 47 ईसा पूर्व में जूलियस सीज़र के द्वारा, 391 ई० में ईसाइयों के द्वारा, 642 ई० में मुसलमानों के द्वारा। बाद के दोनों अवसर पर यह कहा गया है कि उन पुस्तकों से ईसाई धर्म या क़ुरआन को ख़तरा है।

There are many accounts of the burning, in several stages, of part or all the library at Alexandria, from the siege of Julius Caesar in 47 B.C. to its destruction by Christians in A.D. 391 and by Muslims in 642. In the latter two instances, it was alleged that pagan literature presented a danger to the Old and New Testaments or the Quran.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 3, p. 1084]

यहाँ एलेक्जेंड्रिया लाइब्रेरी की बरबादी की घटना के लिए इस्लाम को ज़िम्मेदार ठहराना किसी भी तरह से सही नहीं है। ख़ुद एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में ऊपर लिखे हुए दो उदाहरण साफ़ तौर पर इस बात का खंडन कर रहे हैं। इस्लाम ठीक अपनी प्रकृति से ज्ञान का प्रोत्साहन करता है। हौसला तोड़ना इस्लाम का उद्देश्य कभी नहीं रहा।

फ़िलिप हिट्टी ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ दि अरब्स' में लिखा है—

यह कहानी कि एलेक्जेंड्रिया का पुस्तकालय ख़लीफ़ा उमर के आदेश से नष्ट किया गया और शहर के अनगिनत स्नानगृहों की भट्टियाँ दो महीनों तक पुस्तकालय की पुस्तकों को जलाकर गर्म की जाती रहीं, यह उन फ़र्जी क़िस्सों में से है, जो अच्छी कहानी के साथ ही बुरे इतिहास भी बनाते हैं। सच्चाई यह है कि टॉलेमी द्वितीय (Ptolemy-II) का महान पुस्तकालय इस्लाम से बहुत पहले 48 ईसा पूर्व में जूलियस सीज़र के द्वारा जलाया जा चुका था। एक और पुस्तकालय, जो उपरोक्त पुस्तकालय का सहायक पुस्तकालय था, वह बादशाह थियोडोसियस के आदेश से 389 ई० में जला दिया गया। इसलिए अरबों द्वारा मिस्र-विजय के समय कोई भी महत्वपूर्ण या चर्चा के योग्य पुस्तकालय एलेक्जेंड्रिया में मौजूद नहीं था और किसी भी समकालीन (contemporary) लेखक ने कभी ख़लीफ़ा उमर पर यह आरोप नहीं लगाया। अब्दुल लतीफ़ अल-बग़दादी, जिसकी मृत्यु 1231 ई० में हुई, शायद पहला व्यक्ति है, जिसने बाद में आने वाले समय में इस फ़र्ज़ी क़िस्से की चर्चा की। उसने क्यों ऐसा किया, इसके बारे में हम ज़्यादा कुछ नहीं जानते, फिर भी उसकी चर्चा बाद में क़लमबद्ध की गई और बाद के लेखकों ने उसका बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार-प्रसार किया।

Abd al-Latif al-Baghdadi, who died as late as A.H. 629 (1231 AD), seems to have been the first to relate the tale. Why he did it we do not know; however, his version was copied and amplified by later authors.

[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London 1970), p. 166]

इस्लामी सभ्यता ईश्वर को एक मानने के सिद्धांत पर आधारित है और वह असाधारण तौर पर दूसरी प्राचीन सभ्यताओं से अलग है। इस्लामी सभ्यता ने इंसान को चिंतन-मनन की स्वतंत्रता दी, जो कि पिछली सभी सभ्यताओं में मौजूद नहीं थी। इस तरह इस्लामी सभ्यता के वातावरण में ज्ञान को फलने-फूलने के भरपूर अवसर मिले। दूसरी प्राचीन सभ्यताओं में निश्चित रूप से ऐसा हुआ कि ज्ञान और ज्ञान प्राप्त करने वालों को अत्याचार और दमन का शिकार बनाया गया, लेकिन इस मामले में इस्लामी सभ्यता को दूसरी सभ्यताओं के साथ जोड़ना निःसंदेह एक खुला ऐतिहासिक अन्याय है।

बात इतनी ही नहीं है, सच्चाई यह है कि आधुनिक वैज्ञानिक युग (modern scientific age) का आरंभ करने वाला भी वास्तव में यूरोप नहीं, बल्कि इस्लाम था। यह एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस्लाम के दौर में ज्ञान को बढ़ावा मिला और ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में बड़े-बड़े विद्वान, शोधकर्ता और खोज करने वाले पैदा हुए। इस बात को आम तौर पर इतिहासकारों ने स्वीकार किया है।

प्रोफ़ेसर पी.एम. हॉल्ट और दूसरे ओरिएंटलिस्ट ने इस्लाम के इतिहास पर एक विस्तृत और बड़ी पुस्तक तैयार की है। यह पुस्तक 'द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इस्लाम' के नाम से चार भागों में प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के भाग 2-B के एक लेख में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है कि अतीत में इस्लाम ने पश्चिमी दुनिया के ज्ञान-विज्ञान और सभ्यता पर बहुत ही गहरा प्रभाव डाला । इस लेख का शीर्षक है— "Literary Impact of Islam in the Modern West."

विस्तारपूर्वक जानकारी देने के बाद लेखक ने इस लेख के अंत में लिखा है कि मध्य युग के दौरान ज्ञान का बहाव लगभग पूरी तरह से पूर्व से पश्चिम की ओर जारी था, जबकि इस्लाम पश्चिम का शिक्षक बना हुआ था—

"...During the middle ages, the trend was almost entirely from East to West (when Islam acted as the teacher of the West)."

[*The Cambridge History of Islam* (London), Vol.2-B, p. 888-89]

बैरन कारा डी वॉक्स एक फ़्रांसीसी ओरिएंटलिस्ट हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि अरबों ने वास्तव में विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी सफलताएँ प्राप्त कीं—

"The Arabs have really achieved great things in Science."

फिर भी इनका कहना है—

हमें यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि अरबों में वही बेहतर दर्जे की योग्यता और वही वैज्ञानिक सोच का तोहफ़ा, वही जोश और वही वैचारिक नयापन मौजूद होगा, जो यूनानियों में था। अरब सबसे पहले यूनानियों के शिष्य हैं। उनका विज्ञान दरअसल यूनानी विज्ञान का एक सिलसिला है।

[Baron Carra de Vaux, *The Legacy of Islam* (1931)]

मोंटगोमेरी वाट ने अपनी पुस्तक 'मैजेस्टी दैट वाज़ इस्लाम' में ऊपर लिखे हुए बयान की चर्चा (pg. no. 226) करते हुए इस विचार का खंडन किया है कि अरब केवल यूनानी अनुवादक थे। उन्होंने अरबों को स्थानांतरित करने वाले से ज़्यादा आगे का दर्जा दिया है। उन्होंने लिखा है कि अरबी विज्ञान और दार्शनिकता ने यूरोप के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

Arabs were much more than transmitters, and that Arab science and philosophy contributed greatly to developments in Europe.

[Montgomery Watt, *Majesty That Was Islam* (London), p. 232]

इसी के साथ मोंटगोमेरी वाट ने एक और ऐसी बात कही है, जो सबसे पहले वाले व्याख्यान से भी अधिक आपत्तिजनक है। मोंटगोमेरी वाट ने लिखा है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि अरब यूनानियों के शिष्य थे। अरबी विज्ञान और दार्शनिकता यूनानी अनुवाद की प्रेरणा से आई।

"Science and philosophy in Arabic came into existence through the stimulus of translations from Greek."

[Montgomery Watt, *Majesty That Was Islam* (London), p. 226]

मोंटगोमेरी वाट का यह बयान सही नहीं कि अरबों में वैज्ञानिक सोच पैदा करने का प्रेरणास्रोत यूनान था। बात यह नहीं है कि अरबों ने यूनानी अनुवाद पढ़े, उसके बाद उनके अंदर वैज्ञानिक ढंग से सोच-विचार करने का तरीक़ा आया। सच्चाई यह है कि उनके पास वैज्ञानिक सोच क़ुरआन और एकेश्वरवाद की अवधारणा एवं विचार के माध्यम से आई। इसके बाद उन्होंने यूनान और दूसरे देशों की पुस्तकों के अनुवाद किए और ख़ुद अपनी खोज तथा जाँच के कामों से विज्ञान और दार्शनिकता को आगे बढ़ाया।

इतिहास के विद्वानों और खोजकर्ताओं ने कहा है कि हालाँकि इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि अरब विज्ञान और दार्शनिकता में यूनान के शिष्य थे, लेकिन यह भी सही है कि वे यूनानी ज्ञान के केवल अनुवादक न थे। उन्होंने स्वयं अपनी ओर से इसमें बहुत ज़्यादा बढ़ोतरी की।

[Montgomery Watt, *Majesty That Was Islam* (London), p. 226]

उदाहरण के लिए— अरबों ने यूनान से चिकित्सा और औषधि का ज्ञान लिया। इसके बाद इसका इस हद तक विकास किया कि मेडिकल कॉलेज और अस्पतालों का निर्माण किया, जो कि इससे पहले यूनान में मौजूद न थे। 800 ई० के आसपास अब्बासी खलीफ़ा के ज़माने में ख़लीफ़ा हारून अल-रशीद की पहल पर बग़दाद में दुनिया का पहला मेडिकल कॉलेज स्थापित किया गया और 10वीं शताब्दी की पहली तिमाही तक वहाँ चार और अस्पतालों की स्थापना का रिकॉर्ड बनाया गया।

13वीं शताब्दी में क़ाहिरा (Cairo) में एक अस्पताल बनाया गया, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसमें एक ही समय में 8,000 व्यक्ति रह सकते थे। इसमें महिलाओं और पुरुषों के लिए अलग-अलग वार्ड बने हुए थे। इस तरह अलग-अलग बीमारियों के लिए अलग-अलग विभाग थे। हर रोग के विशेषज्ञ चिकित्सकों की सेवाएँ इसके लिए हासिल की गई थीं। इसमें कई दूसरे व्यवस्था-प्रबंधन के साथ-साथ लाइब्रेरी और लेक्चर रूम भी मौजूद थे।

[Montgomery Watt, *Majesty That Was Islam* (London), p. 227]

इस प्रकार अरबों ने अपनी खोज और जाँच के कामों से चिकित्सा और औषध-विधि को असाधारण तौर पर आगे बढ़ाया। ज़करिया अल-राज़ी, (मृत्यु: 923), जिसे यूरोप में राज़िस के नाम से जाना जाता है, उसने उस समय तक की सभी मेडिकल साइंस पर आधारित दुनिया की पहली मेडिकल एनसाइक्लोपीडिया 'अल-हावी' तैयार की। इस पुस्तक को उसकी मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने पूरा किया। यह पुस्तक लैटिन भाषा में 'कॉन्टिनेंस' के नाम से अनूदित हुई और फिर यूरोप में फैली। इस विस्तृत पुस्तक में हर प्रकार की बीमारी और उनकी दवाओं का विस्तृत विवरण था। इस पुस्तक में उसने हर रोग के लिए यूनानी, सीरियन, भारतीय, फ़ारसी और अरबी लेखकों के दृष्टिकोण का वर्णन किया और फिर उसके चिकित्सीय अवलोकन और जाँच के बाद अपने अनुभवों तथा अपनी खोज का नोट शामिल किया और साथ में एक अंतिम राय व्यक्त की।

इब्ने-सीना (मृत्यु : 1037 ई०) ने अरब चिकित्सकों के बीच असाधारण और उल्लेखनीय प्रसिद्धि प्राप्त की। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अल-क़ानून फ़ी अत-तिब' 12वीं सदी में लैटिन भाषा में अनूदित होकर यूरोप में प्रकाशित

हुई। इसका अंग्रेज़ी नाम ‘Canon of Medicine’ है। इस पुस्तक को यूरोप में जालिनूस और बुक़रात (Galen and Hippocrates) की पुस्तकों से भी ज़्यादा लोकप्रियता और प्रसिद्धि मिली। इब्ने-सीना की पुस्तक यूरोप की चिकित्सा और उपचार की दुनिया पर 16वीं सदी तक छाई रही। केवल 15वीं सदी में यूरोप में इसके सोलह संस्करण छपकर प्रकाशित हुए। बीस संस्करण 16वीं सदी में और 17वीं सदी में इसके कई और संस्करण छपकर प्रकाशित हुए। सर्जरी और सर्जिकल उपकरणों के प्रमुख अरब-लेखक अबुल क़ासिम अज़-ज़ोहरावी (मृत्यु : 1009 ई० के बाद), जिसे लैटिन में आम तौर पर अबुल केसिस के नाम से जाना जाता है, वह इब्ने-सीना का लगभग समकालीन था।

अरब चिकित्सा विज्ञान 11वीं सदी के आरंभ में अपने उच्चतम बिंदु को पहुँच गया और इसके बाद इसकी प्रतिष्ठा तथा ख्याति 17वीं सदी तक बनी रही। सावधानीपूर्वक परीक्षण और अवलोकन का उपहार नष्ट नहीं हुआ था, जब स्पेन में 14वीं सदी के कुछ अरब चिकित्सकों ने ग्रेनेडा और अल्मेरिया में प्लेग के अनुभव से प्लेग के बारे में ज्ञानपूर्ण बातें लिखीं।

[Montgomery Watt, *Majesty That Was Islam* (London), 1984, p. 228]

स्पेन के अब्दुल्लाह इब्ने-बैतार (मृत्यु : 1248) अपने समय के बहुत बड़े वनस्पति विज्ञानी और फार्मासिस्ट थे। फ़िलिप हिट्टी ने इनका ज़िक्र करते हुए लिखा है—

वनस्पति विज्ञान (botany) के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए एक औषध विशेषज्ञ की हैसियत से उन्होंने स्पेन और पूरे उत्तरी अफ़्रीक़ा की यात्रा की और इसके बाद क़ाहिरा में अय्यूबी अल-मलिक अल-कामिल के यहाँ प्रमुख औषध विशेषज्ञ के तौर पर काम किया। मिस्र से उन्होंने सीरिया और फिर पूरे एशिया माइनर की बड़ी-बड़ी यात्राएँ कीं और अनगिनत पौधों के चिकित्सीय महत्व के बारे में खोज करने का काम किया तथा साथ में उनका व्यक्तिगत परीक्षण और अनुभव भी किया। अब्दुल्लाह इब्ने-बैतार ने अपनी खोज और अनुभवों के बाद दो बड़ी और ब्योरेवार पुस्तकें लिखीं— एक ‘अल-मुग़नी फ़ी अल-अद्वियाह अल-मुफ़्रादाह’, जो मेटेरिया मेडिका के बारे में है और दूसरी

'अल-जामे ली मुफ़्रादात अल-अद्विया व अल-अग़ज़िया ' (Compendium on Simple Medicaments and Foods) जो जानवर, वनस्पति और खनिज से आसान इलाज का एक संग्रह है। इसमें लगभग डेढ़ हज़ार पौधों, खनिजों और जानवरों से इलाज के बारे में जानकारी का उल्लेख किया गया है। उनकी पुस्तकें अपने समय में इस विषय पर सबसे ज़्यादा बड़ी और ब्योरेवार पुस्तकें थीं। 1758 ई० में इस पुस्तक का अनुवाद लैटिन भाषा में 'सिंपलीशिया' के नाम से हुआ, उसके बाद इब्ने-बैतार की खोज यूरोप भर में फैली और यूरोप वालों को ज्ञान प्रदान करने का माध्यम बनी।

[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London, 1970), p. 575-76]

चिकित्सा, खगोल-विज्ञान और गणित के बाद मुस्लिम शासनकाल की सबसे बड़ी वैज्ञानिक देन रासायनिक विज्ञान (Chemistry) है। इसने रासायनिक विज्ञान को रहस्यमय यानी अल्केमी के क्षेत्र से बाहर निकाला और उसे एक व्यवस्थित तथा विधिपूर्वक जाँच-प्रयोग और अनुभव पर आधारित विज्ञान का दर्जा दे दिया। कैमिस्ट्री और अन्य फिज़िकल साइंस के अध्ययन के लिए अरबों ने उद्देश्य पर आधारित वैज्ञानिक जाँच-प्रयोग की शुरुआत की, जो यूनानियों के अस्पष्ट और उलझन भरी अटकलों पर एक स्पष्ट और माना हुआ सुधार था। अरबों के माध्यम से ही दुनिया पहली बार वैज्ञानिक विधि (scientific method) से परिचित हुई।

अर-राज़ी के बाद जाबिर इब्ने-हय्यान (711-815 ई०) का नाम मध्यकालीन रसायन विज्ञान के क्षेत्र में सबसे बड़ा नाम है। फ़िलिप हिट्टी ने लिखा है कि जाबिर इब्ने-हय्यान ने विज्ञान संबंधी जाँच और प्रयोग-कार्य के महत्व को इतने अधिक स्पष्ट रूप में स्वीकार किया और साथ ही वर्णन भी किया, जितना किसी भी प्राचीन अल्केमिस्ट ने नहीं किया था। उन्होंने कैमिस्ट्री के सिद्धांत और उसके प्रयोग, दोनों में उल्लेखनीय उन्नति की।

He more clearly recognized and stated the importance of experimentation than any other early alchemist and made noteworthy advances in both the theory and practice of chemistry.

[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London,1970, p. 380)]

जाबिर इब्ने-हय्यान की पुस्तकें 15वीं सदी तक यूरोप में कैमिस्ट्री का अंतिम विश्वसनीय स्रोत का दर्जा रखती थीं। 18वीं सदी के आधुनिक पश्चिमी रसायन विज्ञान के लिए प्रारंभिक सीढ़ी जाबिर इब्ने-हय्यान ही ने तैयार की थी। ऐसा माना जाता है कि जाबिर इब्ने-हय्यान ने अलग-अलग कई विषयों पर क़रीब दो हज़ार पुस्तकें लिखी थीं। मुसलमानों से पहले ऐसा कोई लेखक नहीं हुआ, जिसने इतनी अधिक ज्ञानपूर्ण, बौद्धिक और वैज्ञानिक पुस्तकें लिखी हों।

ये तो केवल कुछ बिखरे हुए और अधूरे संदर्भ (references) हैं। फिर भी ये संदर्भ उस सच्चाई को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं कि इस्लाम ज्ञान और शिक्षा का दुश्मन नहीं, बल्कि इसका समर्थक और संरक्षक है। प्राचीन समय में ज्ञानी दुश्मनी की परंपरा उन धर्मों ने पैदा की, जो अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास पर खड़े हुए थे। इस्लाम ने अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास को समाप्त किया और धर्म को ख़ालिस एकेश्वरवाद की बुनियाद पर स्थापित किया। ऐसी स्थिति में इसका सवाल ही नहीं कि इस्लाम खोज या शोध की मानसिकता और शिक्षा का दुश्मन बने।

ज्ञान और शिक्षा की उन्नति अनेकेश्वरवाद की हत्यारी है। इसलिए अनेकेश्वरवादी धर्म ज्ञान और शिक्षा की उन्नति को रोकने की कोशिश करता है, लेकिन एकेश्वरवाद का मामला इससे अलग है। ज्ञान का विकास एकेश्वरवाद को और अधिक प्रामाणिक व मज़बूत बनाता है। यही कारण है कि एकेश्वरवादी धर्म ज्ञान और शिक्षा के विकास का पूरा प्रोत्साहन करता है और इसे बढ़ावा देता है। इस दृष्टिकोण को समझने के लिए मौरिस बुकाई की पुस्तक 'द बाइबल, द क़ुरआन एंड साइंस' का अध्ययन पर्याप्त है।

इस्लाम ने अनुकूल और सहायक वातावरण दिया

प्राचीन अनेकेश्वरवादी युग में सारी दुनिया में जो वातावरण बना हुआ था, वह अंधविश्वासी विचारों के फैलने के लिए उपयुक्त और सहायक था, लेकिन वह वैज्ञानिक विचारों के विकास के लिए किसी भी तरह से अनुकूल और सहायक नहीं था। यही कारण है कि प्राचीन समय में किसी भी देश में ज्ञान

और विज्ञान का विकास न हो सका। यह काम प्रभावी रूप से केवल उस समय शुरू हुआ, जबकि इस्लामी क्रांति ने प्राचीन अनेकेश्वरवादी वर्चस्व को समाप्त करके नया अनुकूल और सहायक वातावरण बनाया।

प्राचीन यूनान

प्राचीन यूनान (Ancient Greece) में हर चीज़ किसी-न-किसी देवी या देवता के साथ जुड़ी हुई थी। मानवीय मस्तिष्क पर सबसे ज़्यादा प्रभाव पौराणिक कथाओं का था। यूनानी पौराणिक कथाएँ (Greek Mythology) एक बड़ा और विस्तृत विषय है, जिस पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं। यहाँ तक कि 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ ग्रीक माइथोलॉजी' के नाम से इस विषय पर एक अलग एनसाइक्लोपीडिया भी मौजूद है।

प्राचीन यूनान में देवताओं और शूरवीरों के नाम पर अनगिनत विचित्र प्रकार की कहानियाँ प्रसिद्ध थीं, जिनको यूनानी लोग बिल्कुल वास्तविक मानते थे। ऐसे वातावरण में यह संभव न था कि वास्तविक और ठोस रूप में विज्ञान का विकास हो सके। कवियों और कलाकारों की कल्पना के लिए यह वातावरण बिल्कुल उपयुक्त और सहायक था। इसलिए इनके बीच बहुतायत से कवि और कलाकार पैदा हुए, लेकिन वहाँ का वातावरण वैज्ञानिक ढंग के शोध और अध्ययन (scientific research) के लिए उपयुक्त और सहायक नहीं था। इसलिए विद्वान और खोजकर्ता या आजकल की भाषा में वैज्ञानिक वहाँ पैदा भी नहीं हुए।

प्राचीन यूनान में हर चीज़ के देवी या देवता थे, जिनके बारे में उनके यहाँ चमत्कारी विचार और कल्पनाएँ फैली हुई थीं। ऐसी हालत में शायरी और कला जैसी चीज़ों के विकास के लिए आवश्यक वातावरण उनके यहाँ पूरी तरह से मौजूद था। इसलिए यूनान में और यूनान के बाहर दूसरे यूरोपियन देशों में ऐसे बहुत से कलाकार पैदा हुए, जिनको यूनानी पौराणिक कथाओं से प्रेरणा मिली। यहाँ तक कि पश्चिमी साहित्य पर यूनानी पौराणिक कथाओं (Greek Mythology) का प्रभाव आज तक पाया जाता है।

यूनानी सभ्यता प्राचीन समय की प्रसिद्ध और गौरवशाली सभ्यता है, लेकिन वह यूरोप में वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक कार्यों की शुरुआत न कर सकी। यह काम केवल उस समय शुरू हुआ, जबकि वैज्ञानिक ढंग की सोच मुसलमानों के द्वारा यूरोप तक पहुँची। अनेकेश्वरवाद का दृष्टिकोण विकास में रुकावट था, जबकि एकेश्वरवाद का दृष्टिकोण बौद्धिक और मानसिक स्वतंत्रता के एक नए युग को शुरू करने वाला बन गया।

रोमन सभ्यता

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने लिखा है कि ईसाई युग से पहले रोमन सल्तनत ने पूरी मेडीटेरिनियन दुनिया पर वर्चस्व स्थापित कर लिया था। ज्ञान-विज्ञान के इतिहासकारों के लिए रोम एक पहेली बना हुआ है।

रोमन सभ्यता बेहद ताक़तवर सभ्यता थी। वहाँ के लोगों को क़ानूनी विषयों का ज्ञान काफ़ी मज़बूत था। राजनीति और युद्ध-प्रणाली की तकनीक में उसने बहुत उन्नति की। इसके अतिरिक्त यूनानी विज्ञान के ख़ज़ाने तक उसकी सीधी पहुँच थी। इसके उपरांत वह अपने हज़ार साल के दौर में एक भी वैज्ञानिक पैदा न कर सकी।

It failed to produce a single scientist.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 16, p. 367]

इतिहासकारों ने विज्ञान में रूमियों की बेहद ख़राब विफलता का कारण बताने का प्रयास किया है। कहा जाता है कि शायद रूमियों का सामाजिक ढाँचा जो लंबे समय से जादू के भद्दे रूपों पर आधारित था, उसने प्राकृतिक जगत के बारे में विधिपूर्वक जाँच-प्रयोग के कार्य को उनके लिए मुश्किल बना दिया था। वास्तविकता यह है कि एक व्यक्ति जब यह सोचता है कि कितनी कम सभ्यताएँ ऐसी हैं, जिनके अंदर विज्ञान को बढ़ावा मिला तो उसके मस्तिष्क में प्रश्न की प्रकृति बदल जाती है और वह रूमियों की विज्ञान से दूरी को एक मामूली घटना समझने लगता है और प्राचीन यूनान को एक अनोखी तथा हैरानी की बात मान लेता है, जिनकी बुद्धिसंगत व्याख्या कठिन हो।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 16, p. 367].

आम इतिहासकार इस प्रश्न के किसी सुनिश्चित और समझाने योग्य उत्तर तक न पहुँच सके, लेकिन इसका स्पष्ट उत्तर उस समय मालूम हो जाता है, जब हम यह जान लें कि रोमन लोग अनेकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा में व्यस्त थे। यह दरअसल अनेकेश्वरवाद, अंधविश्वास और मूर्ति-पूजा थी, जो रूमियों के लिए विज्ञान के क्षेत्र में खोज और जाँच-प्रयोग के कामों में रुकावट बन गई। सभी प्राकृतिक वस्तुओं के लिए पूज्य और पवित्रता की भावना ने उन्हें प्राकृतिक चीज़ों की जाँच-पड़ताल के कामों से रोक दिया।

एक उदाहरण

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने 'हिस्ट्री ऑफ़ साइंस' के तहत लिखा है कि प्राकृतिक जगत को आज जिस दृष्टि से देखा जाता है, वह मानव इतिहास में एक बहुत नई चीज़ है। बीते समय में बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के लिए यह संभव हुआ कि वह ज्ञान-विज्ञान, धर्म और क़ानून के मैदान में ऊँचे स्तर तक उन्नति करे, लेकिन उस समय आधुनिक वैज्ञानिक विचार और सोच-समझ बिल्कुल मौजूद नहीं थी। मिस्र, मेसोपोटामिया, हिंदुस्तान और पश्चिमी गोलार्ध आदि की सभ्यताओं की प्राचीन समय में यही स्थिति थी। प्राचीन जातियाँ विज्ञान के मामले में उदासीन (indifferent) बनी हुई थीं। हालाँकि लगभग ढाई हज़ार साल पहले यूनान ने एक ऐसी सोच-विचार की एक प्रणाली पैदा की, जो वैज्ञानिक ढंग की थी, लेकिन बाद की सदियों में इसमें और कोई अधिक उन्नति न हो सकी। यहाँ तक कि उसे समझने वाले भी बचे न रह सके। विज्ञान की विशाल शक्ति और जीवन के सभी पहलुओं पर इसका गहरा प्रभाव बिल्कुल एक नई चीज़ है।

यूरोपीय विज्ञान की सुबह पारंपरिक तौर पर यूनान के दार्शनिकों (Philosophers) के द्वारा शुरू हुई, जो छठी और पाँचवीं सदी ईसा पूर्व से संबंध रखती है। उनके कार्य और लिखित सामग्री भी सिर्फ़ अधूरे रूप में हमारे ज्ञान में आ सकी है और वह भी उन लेखकों के द्वारा, जो उनके सैकड़ों साल बाद पैदा हुए तथा उन्होंने अपनी पुस्तकों में उनके संक्षिप्त संकेत और संदर्भ दिए।

ये संक्षिप्त संकेत और संदर्भ भी बहुत भटकाने वाले हैं। उदाहरण के लिए— थेल्स का कथन है कि हर चीज़ पानी है। देखने से यह एक वैज्ञानिक वाक्य लगता है, लेकिन इसके पूरे कथन को सामने रखें तो यह एक अंधविश्वासी चरित्र की आस्था मालूम होगी, क्योंकि पूरा कथन इस तरह है— हर चीज़ पानी है और दुनिया देवताओं से भरी हुई है। अंग्रेज़ी में पूरा वाक्य इस तरह है— All is water, and the world is full of Gods.

[Encyclopaedia Britannica (1984), Vol. 16, p. 366]

थेल्स प्राचीन यूनान का एक प्रसिद्ध दार्शनिक है, जिसका युग छठी सदी ईसा पूर्व बताया जाता है। यूनान के दूसरे दार्शनिकों की तरह इसकी परिस्तिथियों के बारे में भी भरोसेमंद और प्रमाणित जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह हालाँकि प्राचीन दुनिया के सात अक़्लमंद व्यक्तियों (seven wise men) में से एक है। इसके बावजूद भी आज उसकी कोई पुस्तक सुरक्षित नहीं और न ही उसके बारे में कोई समकालीन या जीवित (contemporary) रिकॉर्ड पाया जाता है।

वास्तविकता यह है कि यूनानियों और रूमियों, दोनों के लिए विज्ञान की राह में आगे बढ़ने की रुकावट केवल एक थी और वह थी उनकी अनेकेश्वरवादी विचारधारा और सोच। उनकी अनेकेश्वरवादी सोच ने उनसे वह वास्तविक और सच्चाई को जाँचने वाली मानसिकता छीन रखी थी, जो वैज्ञानिक प्रकार जाँच-पड़ताल और खोज के लिए आवश्यक है। ऐसी स्थिति में वे विज्ञान में प्रगति करते तो किस तरह करते।

ज्ञान की ओर सफ़र

यूनान यूरोप का एक देश है। प्राचीन समय में यहाँ कई महान वैज्ञानिक पैदा हुए। उनमें से एक नाम आर्किमिडीज़ का है। कहा जाता है कि उसने प्रारंभिक रूप की सादा मशीन चरख़ी अर्थात् पानी-पेंच (water screw) का आविष्कार किया, लेकिन विचित्र बात है कि यूनान के अनेक वैज्ञानिक बिजली की तरह क्षणिक और अस्थायी तौर पर चमके तथा फिर जल्द ही लुप्त हो गए। वे यूरोप को या केवल यूनान को भी विज्ञान और उद्योग के दौर में प्रविष्ट न करा सके। स्वयं आर्किमिडीज़

का परिणाम यह हुआ कि एक रोमन सिपाही ने उसकी उस समय हत्या कर दी, जबकि वह शहर के बाहर रेत के ऊपर गणित के सवालों को हल कर रहा था।

प्राचीन यूनानी शिक्षा और विज्ञान एवं आधुनिक वैज्ञानिक यूरोप के बीच बहुत लंबे समय का बौद्धिक अंतराल (intellectual gap) पाया जाता है। आर्किमिडीज़ ने अपनी मशीनी चरख़ी की खोज 260 ईसा पूर्व में की थी, जबकि जर्मनी के जे. गुटेनबर्ग ने पहली मशीनी प्रेस 1450 ई० में ईजाद की। दोनों के बीच डेढ़ हज़ार साल से अधिक अवधि का अंतर है।

ऐसा क्यों हुआ? क्या कारण है कि प्राचीन यूनानी विज्ञान का सिलसिला यूनान में और यूरोप में जारी न रह सका? इसका उत्तर यह है कि इस्लामी क्रांति से पहले वह वातावरण मौजूद न था, जिसमें वैज्ञानिक ढंग की खोज और अनुसंधान का काम स्वतंत्रता के साथ जारी रह सके। इस्लाम ने एकेश्वरवाद की बुनियाद पर जो क्रांति की अलख जगाई, उसके बाद ही इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि इस मैदान की बाधाएँ समाप्त हो गईं और वह अनुकूल एवं सहायक वातावरण के रूप में तैयार हुईं, जिसमें वैज्ञानिक ढंग की खोज और जाँच-पड़ताल का काम किसी बाधा के बिना जारी रह सके।

ज्ञान और विज्ञान में उन्नति एक लगातार व्यावहारिक प्रक्रिया का नाम है, लेकिन यूनानी विद्वानों का काम उस समय के विरोधी हालात और समर्थन की कमी के कारण एक लगातार व्यवहार के रूप में आगे न बढ़ सका। वह क्षण भर की चमक बनकर रह गया। इसके बाद 7वीं सदी में जब इस्लामी क्रांति ने अंधविश्वास के युग को समाप्त किया तो ज्ञान और विज्ञान में उन्नति के कामों के लिए अनुकूल और सहायक अवसर प्राप्त हो गए। अब वैज्ञानिक प्रकार की खोज और जाँच-प्रयोग एक लगातार व्यावहारिक रूप में जारी हो गए। यहाँ तक कि ये जाँच-प्रयोग आधुनिक प्रगतिशील और विकसित युग तक पहुँचे।

असंबद्ध वातावरण की इस स्थिति के कारण यूनानी विद्वानों का काम अधिकतर सोच के दायरे में सिमटा रहा और वह व्यावहारिक प्रयोगों तक नहीं पहुँचा। उदाहरण के लिए— अरस्तू ने भौतिक विज्ञान (physics) के विषय पर लेख लिखे, लेकिन उसने अपने पूरे जीवन में भौतिक विज्ञान पर एक भी व्यावहारिक प्रयोग नहीं किया। यूनानी विद्वानों की गतिविधियाँ और उनकी महत्वपूर्ण भूमिका दर्शनशास्त्र एवं तर्क (philosophy and logic) के क्षेत्र में तो दिखाई देती है,

लेकिन वह प्रयोगसिद्ध विज्ञान (emperical science) क्षेत्र में बिल्कुल दिखाई नहीं देती। विज्ञान की वास्तविक शुरुआत उस समय होती है, जब इंसान के अंदर खोज की भावना स्वतंत्र रूप से पैदा हो जाए। प्राचीनकाल में यह भावना अस्थायी तौर पर केवल व्यक्तिगत रूप में कहीं-कहीं उभरी, लेकिन वह वातावरण के विरोध और समर्थन की कमी के कारण बड़े पैमाने पर पैदा न हो सकी।

स्वतंत्रता से जाँच-पड़ताल के लिए सहायक और तालमेल भरा यह वातावरण इस्लाम की एकेश्वरवादी क्रांति के बाद ही अस्तित्व में आया। इस्लामी क्रांति ने अचानक पूरे वातावरण को परिवर्तित कर दिया और ऐसा तालमेल भरा और सहायक वातावरण पैदा कर दिया, जिसमें स्वतंत्रता के साथ प्राकृतिक चीज़ों की जाँच का काम हो सके। इस वैज्ञानिक तरीक़े की सोच की शुरुआत पहले मक्का में हुई, इसके बाद वह मदीना पहुँची, फिर वह दमिश्क़ (Damascus) की यात्रा करते हुए बग़दाद को अपना नया और आधुनिक सोच का शानदार केंद्र बनाती है। इसके बाद वह स्पेन, सिसली और इटली होते हुए पूरे यूरोप में फैल जाती है और वह फैलती ही रहती है। यहाँ तक कि वह सारी दुनिया के लोगों की मानसिकता को बदल देती है।

ज्ञान-विज्ञान की यह विकासवादी यात्रा इस्लामी क्रांति से पहले संभव नहीं हो सकी। इससे पहले वैज्ञानिक सोच केवल व्यक्तिगत या स्थानीय स्तर पर पैदा हुई और वातावरण के विरोध और समर्थन की कमी के कारण बहुत शीघ्र समाप्त हो गई। इस्लाम ने पहली बार विज्ञान की उन्नति के लिए अनुकूल और सहायक वातावरण दिया।

अध्याय 2

सृष्टि को पूज्य मानना

प्रसिद्ध मानव विज्ञानी नाथन सोडेर्बलोम ने 1913 में कहा था कि धर्म का मूल विचार पवित्रता की आस्था है। उस समय से अब तक धर्मों के इतिहास का अध्ययन बहुत बड़े पैमाने पर किया गया है। इस विषय पर बड़ी संख्या में खोज से संबंधित ज्ञानपूर्ण पुस्तकें जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेज़ी भाषाओं में लिखी गई हैं।

कुछ अपवादों को छोड़कर धर्म के लगभग सभी विद्वान इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि पवित्रता की धारणा धर्म की मूल सोच होती है अर्थात् चीज़ों में ऐसे रहस्यमय गुण या रहस्यमय ताक़तों का होना, जो आम लोगों में या चीज़ों में न पाई जाती हो अथवा सामान्य समझ और सामान्य बुद्धि के सिद्धांतों के तहत जिनकी बुद्धिसंगत व्याख्या (rational interpretation) नहीं की जा सकती हो। 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रीलिजन एंड इथिक्स' में इस विषय पर 'पवित्रता' शीर्षक के तहत विस्तृत लेख मौजूद है।

(The Encyclopaedia of Religion and Ethics discusses this in detail in its article on 'Holiness.')

पवित्रता का यह विश्वास कोई फ़र्ज़ी या मनगढ़ंत चीज़ नहीं, यह इंसान की प्रकृति में आंतरिक गहराइयों तक समाया हुआ है। इसका उचित प्रयोग यह है कि व्यक्ति अपने इस मनोभाव और जज़्बे को एक ईश्वर के लिए विशेष बना दे, लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि आदमी का जज़्बा उसकी ओर मुड़ जाता है, जो ईश्वर नहीं है। जिस पवित्रता की भावना की दिशा वास्तव में सृष्टिकर्ता की ओर होनी चाहिए थी, उसका रुख़ प्राकृतिक चीज़ों और प्राणियों की ओर हो जाता है।

इसका कारण यह है कि ईश्वर एक अदृश्य सच्चाई है। व्यक्ति अपने सृष्टिकर्ता को अपनी आँखों से देख नहीं पाता, इसलिए वह ऐसा करता है कि आसपास की दुनिया में जो चीज़ें प्रभावशाली नज़र आती हैं, उन्हीं को पवित्र

समझकर पूजने लगता है। यही वह व्यवहार है, जिसने प्राचीनकाल में वह चीज़ पैदा की जिसे धर्म की भाषा में अनेकेश्वरवाद और ज्ञान की भाषा में प्रकृति-पूजा (nature worship) कहा जाता है। पवित्रता का यह जज़्बा इंसान को अंदर से झकझोर रहा था कि वह किसी को पवित्र मानकर उसकी उपासना करे। उसने हर उस चीज़ की उपासना आरंभ कर दी, जो देखने में प्रभावशाली, रहस्यमय और अलग दिखाई दी। उदाहरण के लिए— सूरज, चाँद, सितारे, पहाड़, नदी, आग, जानवर इत्यादि।

पैग़ंबरों की शिक्षाओं के तहत एक ही सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर की धारणा मौजूद थी, लेकिन इस धारणा की सही समझ का रूप बिगड़ गया। इंसान ने मान लिया कि इस तरह का एक सर्वोच्च ईश्वर कहीं आसमान की ऊँचाइयों पर है, जो छुपा हुआ है या निष्क्रिय है और उसने दुनिया के सभी कामों को अपने सहायकों तथा अधीनस्थ देवी-देवताओं को सौंप दिया है।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 12, p. 877]

आधुनिक समय में धर्म के विद्वानों की आम तौर पर इस बात पर सहमति है कि धर्म की वास्तविकता पवित्रता का विश्वास है अर्थात् कुछ चीज़ों में ऐसी विशेषताओं या रहस्यमय शक्तियों को मानना, जो आम लोगों में या दूसरी चीज़ों में न पाई जाती हों और सामान्य समझ एवं सामान्य बुद्धि के सिद्धांतों के तहत जिनकी बुद्धिसंगत व्याख्या संभव न हो। इससे उन पवित्र चीज़ों के लिए भय और उम्मीद की मानसिकता पैदा होती है। उनकी तुलना में व्यक्ति अपने आपको मजबूर और लाचार महसूस करता है। वह समझता है कि यहाँ मेरी सीमा समाप्त हो गई। यह पवित्र चीज़ें विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जैसे— पत्थर, जानवर, समुद्र, सूरज, चाँद और इसी तरह राजा तथा धार्मिक व्यक्तित्व आदि। व्यक्ति जिन चीज़ों को इस प्रकार पवित्र मान ले तो वह उनकी उपासना करता है, उनके नाम पर क़ुरबानी करता है और उनको प्रसन्न करने के लिए रस्में मनाता है, ताकि उनके क्रोध से बचे और उनकी कृपाओं को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें प्राप्त कर सके।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने लिखा है—

पवित्रता पवित्र हस्तियों में होती है, जैसे— (1) धार्मिक गुरु और राजा, (2) विशेष रूप से चिह्नित पवित्र स्थानों में, उदाहरणतः— मंदिर और मूर्ति

में, (3) प्राकृतिक चीज़ों में, उदाहरणतः— नदी, सूरज, पहाड़, जानवर और वृक्ष में। धार्मिक गुरु और उपासना के काम विशिष्टता की हैसियत रखते हैं। उनके धार्मिक संस्कार और रस्म ईश्वरीय कार्रवाई का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी तरह राजा देवलोक और धरती के बीच एक विशेष कड़ी है। इसी आधार पर उसे देवलोक का बेटा या 'ईश्वर का हाथ' जैसे उपनाम दे दिए जाते हैं।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 16, p. 124]

मानव विज्ञान (anthropology) के विद्वान और खोजकर्ता, जिन्होंने पवित्रता की आस्था को धर्म का आधार बताया है, उनमें से कुछ के नामों को एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने दर्ज किया है—

Nathan Soderblom, Rudolf Otto, Emile Durkheim, Max Scheler, Gerardus Van der Leeuw, W. Brede Kristensen, Friedrich Heiler, Gustov Mensching, Roger Caillois, Mircea Eliade.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 16, p.124]

आधुनिक धार्मिक विद्वानों का यह कहना उचित है कि धर्म का मूल विचार पवित्रता की भावना है। पवित्रता का यह जज़्बा स्वयं का बनाया हुआ नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक रूप से हर व्यक्ति के अंदर मौजूद है। वैसे जब एक ईश्वर के सिवा किसी और को पवित्र एवं पूज्य माना जाए तो यह वास्तविक प्राकृतिक जज़्बे का ग़लत प्रयोग होता है और यही हर प्रकार की बुराई की वास्तविक जड़ है। जो पवित्र नहीं है, उसे जब व्यक्ति पवित्र और पूज्य मानता है तो वह हर प्रकार की उन्नति का दरवाज़ा अपने लिए बंद कर लेता है।

अपवित्र को पवित्र मानने की दो स्थितियाँ हैं— एक है प्राकृतिक चीज़ों और घटनाओं को पवित्र एवं पूज्य मानना और दूसरा है इंसानों में से किसी को पवित्र तथा पूज्य मानना। यह दोनों ही बुराइयाँ प्राचीनकाल में सारी दुनिया में किसी-न-किसी रूप में स्थित थीं और यही सबसे बड़ा कारण है, जिसने मानवीय सोच को ग़ैर-वैज्ञानिक (unscientific) सोच बना रखा था।

पवित्रता का जज़्बा व्यक्ति के मनोविज्ञान में प्राकृतिक रूप से गहराई से समाया हुआ है और इस प्रकार के मनोविज्ञान को किसी एक शब्द में समझाना बहुत ही कठिन है। इंसान के मन की स्थिति के लिए जो शब्द बोले जाते हैं, वह

हमेशा सांकेतिक और प्रतीकात्मक होते हैं, न कि वास्तविक। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं केवल इस बात पर सहमत हूँ कि पवित्रता का जज़्बा मज़हब का केंद्रबिंदु है, लेकिन यह पवित्रता वास्तविक है, न कि वर्तमान समय के धर्म के विद्वानों के विचार के अनुसार केवल काल्पनिक।

वास्तविकता यह है कि उपासना का जज़्बा एक स्वाभाविक जज़्बा है, जो हर व्यक्ति के अंदर आनुवंशिक रूप में मौजूद होता है, इसी कारण व्यक्ति अपने अंदरूनी जज़्बे के अनुसार चाहता है कि वह किसी को पवित्र और पूज्य मानकर उसके आगे झुक जाए। यह अंदरूनी अहसास दो रूपों में प्रकट होता है— एक है एकेश्वरवाद और दूसरा है अनेकेश्वरवाद।

यदि इंसान एक ईश्वर को पवित्र माने और उसे अपना रब मानकर उसकी इबादत करे तो उसने एक सही जज़्बे का सही जगह पर प्रयोग किया। यह वास्तव में ईश्वर ही है, जो पवित्रता की विशेषता रखता है। इसलिए एक और केवल एक ईश्वर को पवित्र मानना एक सुनिश्चित सच्चाई को स्वीकार करना है, लेकिन इंसान ऐसा करता है कि दुनिया में जो भी चीज़ उसे देखने में प्रभावशाली दिखाई दे या अपने से अलग नज़र आए, उसे वह पवित्र और पूज्य मान लेता है और उसकी उपासना, श्रद्धा और सम्मान में व्यस्त हो जाता है। यह एक सही जज़्बे का ग़लत प्रयोग है। यह ऐसा है कि जो कुछ केवल एक ईश्वर को देना चाहिए, वह उसे देना है जो ईश्वर नहीं है। धार्मिक भाषा में इसका नाम अनेकेश्वरवाद है। आम भाषा में हम इसे अंधविश्वास कह सकते हैं।

ईश्वर के सिवा दूसरी चीज़ों को पवित्र और पूज्य मानने की यही ग़लती थी, जो प्राचीनकाल में हज़ारों वर्ष तक विज्ञान के युग को अस्तित्व में आने से रोके रही। केवल एक ईश्वर को पवित्र माना जाए तो इससे कोई विज्ञान संबंधी समस्या या मानसिक समस्या पैदा नहीं होती, क्योंकि ईश्वर हमारी भौतिक पहुँच और हमारे कार्य के क्षेत्र से बाहर की चीज़ है। वह आसमानों से भी परे है, जहाँ इंसान का जाना नहीं हो सकता। वैसे दूसरी चीज़ें जिनको पवित्र और पूज्य मान लिया जाता है, वह हमारी भौतिक पहुँच और कार्य-सीमा के अंदर की चीज़ें हैं। यह वही चीज़ें हैं जिनकी खोज और जाँच-पड़ताल से ही वास्तव में विज्ञान की शुरुआत होती है, लेकिन जब इन चीज़ों को पवित्र और पूज्य मान लिया जाए तो वे वैज्ञानिक जाँच के क्षेत्र से निकलकर उपासना के क्षेत्र में चली जाती हैं।

ईश्वर के सिवा इस दुनिया में जो भी चीज़ें हैं, वह सब-की-सब ईश्वर के द्वारा बनाई गई चीज़ें हैं। ये वही हैं, जिनको आम तौर पर प्राकृतिक घटनाएँ (natural phenomena) कहा जाता है। यही प्राकृतिक चीज़ें और घटनाएँ विज्ञान के कार्यों का आधार हैं। इनका अध्ययन करना, इनके बारे में जानकारी प्राप्त करना और इन पर नियंत्रण प्राप्त करना, इसी का दूसरा नाम विज्ञान है।

अब चूँकि प्राचीनकाल में सभी जातियों ने प्राकृतिक चीज़ों और घटनाओं को पूज्य एवं पवित्र समझ लिया था, इसलिए वे उनके लिए उपासना की चीज़ बन गईं। ये उनके लिए जाँच और खोज का विषय न बन सकीं। यही वह सोच-विचार संबंधी बिगाड़ और गुमराही है, जो प्राचीनकाल में विज्ञान संबंधी खोज के कामों को हज़ारों वर्ष तक रोके रही। विकास का यह दरवाज़ा केवल उसी समय खुला, जबकि एकेश्वरवादी क्रांति ने मानवीय सोच और मानसिकता को बदला और प्राकृतिक चीज़ों एवं घटनाओं को पवित्रता के पद से हटा दिया।

विज्ञान का विस्तार

यूरोप के इतिहास में छठी सदी ई० से लेकर 10वीं सदी ई० तक के काल को अंधकार युग (dark ages) कहा जाता है। यह वह युग है, जबकि यूरोप मानव समाज की उन्नति और सभ्यता से पूरी तरह से दूर था। यह यूरोप के लिए बौद्धिक अंधकार और बर्बरता का युग था।

"For Europe it was a period of intellectual darkness and barbarity."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. III, p. 380]

इस अंधकार युग का संबंध केवल यूरोप से था। ठीक उस समय जबकि यूरोप पर 'अंधकार युग' का अँधेरा छाया हुआ था, इस्लामी दुनिया में सभ्यता की रोशनी पूरी तरह से मौजूद थी। बर्ट्रेंड रसेल के शब्दों में, ठीक उसी युग में हिंदुस्तान से स्पेन तक इस्लाम की शानदार और प्रतिभाशाली सभ्यता अस्तित्व में आ चुकी थी।

"From India to Spain, the brilliant civilization of Islam flourished."

[Bertrand Russell, *History of Western Philosophy,* p. 395]

यह इस्लामी सभ्यता जो सिसली और स्पेन में प्रविष्ट होकर यूरोप के अंदर तक पहुँच चुकी थी, उसने यूरोप के लोगों को इतना प्रभावित किया कि पश्चिमी यूरोप के छात्र स्पेन के इस्लामी विश्वविद्यालयों (universities) में शिक्षा के लिए आने लगे। मुस्लिम दुनिया के बहुत से लोग निकलकर यूरोप पहुँचे। जब यूरोपीय लोगों को मालूम हुआ कि मुसलमान शिक्षा और ज्ञान के मामलों में उनसे बहुत आगे जा चुके हैं तो उन्होंने मुस्लिम विद्वानों की पुस्तकों का अनुवाद लैटिन भाषा में करना शुरू किया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के शोध लेखक ने लिखा है कि उस समय मुसलमानों के पास ऐसे पुस्तकालय थे, जिनकी पुस्तकों की संख्या 1,00,000 से अधिक थी। वह सारा मूल साहित्य जिसने यूरोप के नवजागरण को उभारा, वह मुस्लिम पुस्तकालयों की अरबी पुस्तकों के अनुवाद से प्राप्त किया गया था।

The Encyclopaedia Britannica says, "Most of the classical literature that spurred the European Renaissance was obtained from translations of Arabic manuscripts in Muslim libraries."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 15, p. 646]

आधुनिक समय में बहुत सारे ऐसे विद्वान और खोजकर्ता पैदा हुए हैं, जैसे— गुस्ताव लिबान, रॉबर्ट ब्रीफॉल्ट, जे.एम. रॉबर्ट, मोंटगोमेरी वाट और इसी तरह के कई विद्वान हैं, जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि अरबों की खोज और जाँच के कामों के माध्यम से ही यूरोप में आधुनिक विज्ञान की शुरुआत हुई। इस दृष्टिकोण से यह कहना सही होगा कि यहाँ जो बात कही जा रही है, वह विश्वस्तर पर एक स्वीकृत बात है। अंतर केवल यह है कि दूसरे लोगों ने जिस घटना को 'मुस्लिम इतिहास' में लिख रखा है, उसके बारे में हमारा कहना है कि इसे 'इस्लाम के इतिहास' में लिखा जाए। इसे इंसान के हिस्से से निकालकर ईश्वर के हिस्से में डाल दिया जाए।

कुछ उदाहरण

प्राचीनकाल में अनेकेश्वरवादी आस्थाओं के तहत चीज़ों को पवित्र और पूज्य मान लिया गया था। इस मानसिकता ने चीज़ों के बारे में स्वतंत्र सोच और चिंतन-मनन का दरवाज़ा बंद कर दिया था। उसके बाद एकेश्वरवाद की क्रांति आई, जिसने मानवीय इतिहास में पहली बार आज़ादी के साथ चिंतन-मनन करने का वातावरण पैदा किया। हर मामले में बेरोक-टोक और बिना किसी झिझक के जाँच-पड़ताल, शोध और अध्ययन का काम किया जाने लगा।

इस तरह एकेश्वरवाद की क्रांति ने मानवीय इतिहास में पहली बार सुनियोजित रूप से वैज्ञानिक तरीक़े के चिंतन-मनन की बुनियाद रखी। इससे पहले भी हालाँकि अलग-अलग और व्यक्तिगत सतह पर कुछ लोगों ने वैज्ञानिक तरह से जाँच और खोज का काम किया था, लेकिन विरोधी और प्रतिकूल माहौल के कारण उनका तथा उनके कामों का आदर नहीं हुआ और उनका काम आगे न बढ़ सका।

आम तौर पर दूरबीन का आविष्कारक गैलीलियो (15 फ़रवरी, 1564 से 8 जनवरी, 1642) को समझा जाता है, लेकिन सही बात यह है कि गैलीलियो के समय से बहुत पहले अबू इसहाक़ इब्न जंदूब (मृत्यु : 767 ई०) ने आसमान का अध्ययन किया। उन्होंने दूर की चीज़ों को देखने के लिए कुछ ख़ास नियम तैयार किए और उनके अनुसार दूरबीन का आविष्कार किया। गैलीलियो ने इस शुरुआती दूरबीन को आगे विकसित किया। यह हुनर और वैज्ञानिक तरीक़ा आगे बढ़ता रहा, यहाँ तक कि वह वर्तमान युग की इलेक्ट्रॉनिक दूरबीनों तक जा पहुँचा।

आधुनिक विज्ञान का बुनियादी अवलोकन (observation) जाँच-प्रयोग और अनुभव पर है, लेकिन प्राचीनकाल में कई प्रकार की अंधविश्वासी आस्थाएँ इस प्रकार के जाँच-प्रयोग और अनुभव की राह में रुकावट बने हुए थे। जाबिर इब्ने-हय्यान (मृत्यु : 817 ई०) ने अवलोकन, जाँच-प्रयोग और अनुभव की विज्ञान की महत्ता को समझा और इसका वैज्ञानिक अध्ययन में प्रयोग किया। उनकी लिखित सामग्री अनूदित होकर यूरोप पहुँची। यह सोच उन्नति करती रही

और यहाँ तक कि वह चीज़ अस्तित्व में आई, जिसे वर्तमान समय में प्रायोगिक विज्ञान (experimental science) कहा जाता है।

आधुनिक काल में यह माना जाता है कि धरती सूरज के गिर्द गोल क्षेत्र में नहीं घूमती, बल्कि अंडाकार पथ (elliptical orbit) पर घूमती है। ग्रहों की यह हरकत आज केप्लर के तीसरे नियम के नाम से प्रसिद्ध है, लेकिन इस ब्रह्मांडीय घटना को शुरुआती तौर पर जिसने खोजा, वह अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्न जाबिर अल-बत्तानी (मृत्यु : 929 ई०) हैं। उन्होंने अपने खगोलीय अवलोकन (astronomical observation) और जाँच के माध्यम से इस सच्चाई को मालूम किया और इसके बारे में पुस्तक लिखी। उनकी पुस्तक अनूदित होकर यूरोप पहुँची और आधुनिक प्रायोगिक विज्ञान (modern experimental science) को अस्तित्व में लाने का कारण बनी।

Al-Battani (born c. 858, in or near Haran, near Urfa, Syria—died 929, near Sammara, Iraq), Arab astronomer and mathematician who refined existing values for the length of the year and of the seasons, for the annual precession of the equinoxes, and for the inclination of the ecliptic. He showed that the position of the Sun's apogee, or farthest point from the Earth, is variable and that annular (central but incomplete) eclipses of the Sun are possible. He improved Ptolemy's astronomical calculations by replacing geometrical methods with trigonometry. From 877 he carried out many years of remarkably accurate observations at ar-Raqqah in Syria.

Al-Battani was the best known of Arab astronomers in Europe during the Middle Ages. His principal written work, a compendium of astronomical tables, was translated into Latin in about 1116 and into Spanish in the 13th century. A printed edition, under the title De motu stellarum (On Stellar Motion), was published in 1537.

[*Encyclopaedia Britannica—Arab astronomer and mathematician*]

अबू अली इब्न अल-हेशाम (965-1040 ई०) जिन्हें पश्चिम में अल-हज़न के नाम से जाना जाता है, वे इतिहास में पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने भौतिक चीज़ों में जड़त्व (inertia) का विचार दिया। उनकी यह खोज अनूदित होकर यूरोप पहुँची। वहाँ के विद्वानों ने उसे पढ़ा तथा उस पर और अधिक खोज का काम किया। यहाँ तक कि वह चीज़ अस्तित्व में आई, जिसे भौतिक चीज़ों की गति के बारे में न्यूटन के पहले नियम के नाम से जाना जाता है। यह दरअसल इब्न अल-हेशाम हैं, जिन्होंने सबसे पहले यह खोज की कि रोशनी एक जगह से दूसरी जगह तक जाने के लिए ऐसा रास्ता चुनती है, जिसमें कम-से-कम समय लगे। यही वह खोज है, जो आधुनिक समय में 'फ़रमा के सिद्धांत' (Fermat's principle) के नाम से सारी दुनिया में प्रसिद्ध है।

इब्न अल-हेशाम या अल-हज़न एक अग्रणी वैज्ञानिक चिंतक-विचारक थे, जिन्होंने दृष्टि विज्ञान और प्रकाश विज्ञान (optics) की समझ के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। विज्ञान के सिद्धांत को सत्यापित करने के लिए प्रयोग-कार्य का उपयोग ख़ास तौर से जाँच की उनकी पद्धति, आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति को अस्तित्व में लाने का कारण बनी। प्रकाश विज्ञान पर उनकी पुस्तक 'किताब अल-मनाज़िर' (Book of Optics) लैटिन भाषा में (De Aspectibus) अनूदित होकर यूरोप पहुँची। इस पुस्तक में मौजूद उनके विचारों ने यूरोप के विद्वानों को बहुत प्रभावित किया।

आधुनिक समय के बहुत सारे लोग उन्हें प्रकाश विज्ञान के इतिहास का अत्यधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति और 'आधुनिक प्रकाश विज्ञान का पिता' मानते हैं। उन्होंने प्रकाश विज्ञान से संबंधित विभिन्न विषयों पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। लैटिन भाषा में अनूदित की गई उनकी पुस्तकों ने मध्यकालीन और पुनर्जागरण यूरोप के बहुत सारे चिंतकों और विचारकों, जैसे— रोजर बेकन (Roger Bacon), रेने डेसकार्टेस (Rene Descartes) और क्रिस्चियन हुय्गेंस (Christian Huygens) आदि को प्रभावित किया। पश्चिम ने उनके सम्मान में चाँद के क्रेटर और क्षुद्रग्रह 59,239 (Asteroid 59239) को अल-हज़न नाम दिया है।

धरती की आयु

धरती पर इंसान के आगमन का निश्चित इतिहास वैज्ञानिकों को मालूम नहीं। फिर भी उन्होंने ऐसे मानवीय ढाँचे और कंकाल खोजे हैं, जिनके बारे में उनका विश्वास है कि वह दस हज़ार साल ईसा पूर्व के समय से संबंध रखते हैं। इसलिए इस मामले में बाइबल के व्याख्यान को वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते। बाइबल की पुस्तक 'उत्पत्ति' (Genesis) में मानवीय पीढ़ियों की जो तारीख़ें दी गई हैं, उसके अनुसार धरती पर आदम का आगमन मसीह से तीन हज़ार सात सौ साल पहले हुआ। यहाँ तक कि 1975 के यहूदी कैलेंडर में हिसाब लगाकर बताया गया था कि धरती पर इंसान का सर्वप्रथम आगमन 5,736 साल पहले हुआ। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह हिसाब पूरी तरह से अस्वीकार्य है।

ईसाइयों ने इस प्रकार धरती पर पूरी मानवीय आयु को बाइबल के अनुसार केवल कुछ हज़ार वर्षों में समेट दिया था। इस हिसाब के वैज्ञानिक तौर पर ग़लत होने की बात 18वीं सदी में जेम्स हट्टन की खोज से सामने आई, जो भू-विज्ञान (Geology) का माहिर था। उसने अपनी सारी उम्र चट्टानों और धरती की बनावट का अध्ययन करने में लगा दी। उसने सिद्ध किया कि पृथ्वी को अपने वर्तमान स्वरूप में विकसित होने में लाखों वर्ष का समय लगा।

उसके बाद 19वीं सदी में चार्ल्स लयेल के वैज्ञानिक अध्ययन और जाँच-प्रयोग के आधार पर प्रस्तुत विचारों ने हट्टन के सिद्धांत की पुष्टि की। चार्ल्स लयेल की प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ़ जियोलॉजी', जिसका पहला भाग 1830 ई० में प्रकाशित हुआ, वह बड़ी हद तक बाइबल के हिसाबी पैमाने को गंभीर चर्चा और बहस से हटाने का कारण बनी। सच्चाई यह है कि यह चार्ल्स लयेल की पुस्तकों का परिणाम था कि पूरी दुनिया को इस बात पर विश्वास हो गया कि बाइबल की व्याख्या ग़लत हो सकती है। जबकि इससे पहले यह सोच और अनुमान से परे था कि बाइबल के बयान को ग़लत समझा जाए।

"Indeed, Lyell's books were largely responsible for convincing the world at large that the Bible could be wrong, at any rate in some respects— a hitherto unthinkable thought."

[Fred Hoyle, *The Intelligent Universe,* p.29]

बाइबल की अवधारणाओं के बारे में इस तरह का दृष्टिकोण यूरोप के ज्ञान-विज्ञान की तरक़्क़ी में रुकावट बन गया। जिस व्यक्ति ने भी चर्च की मंज़ूरी से अलग विचारधारा और सोच पेश करने की हिम्मत की, उसे धर्म के विरुद्ध या धर्मद्रोही बताकर सज़ा के योग्य क़रार दे दिया गया, लेकिन इस्लाम में इस प्रकार की असत्य विचारधारा को कभी भी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई। यही कारण है कि स्पेन में जब इस्लाम के प्रभाव के अधीन विज्ञान संबंधी खोज और अध्ययन का काम शुरू हुआ तो वहाँ उन्हें किसी भी तरह के धार्मिक विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

यूनानी विज्ञान

यूरोप की आधुनिक प्रगति का दौर 14वीं सदी से 16वीं सदी के बीच शुरू हुआ, जिसे आम तौर पर नवजागरण (renaissance) कहा जाता है। नवजागरण का अर्थ पुनर्जागरण या पुनर्जन्म से है। यूरोपियन अपने इस दौर का संबंध एक पश्चिमी देश यूनान से जोड़ते हैं। वे बताते हैं कि यूरोप का आधुनिक युग दरअसल प्राचीन यूनान के विचारों का पुनर्जीवन या एक 'दूसरा जीवन' है।

वास्तविकता यह है कि यह केवल 'जागरण' है, न कि 'पुनर्जागरण'। यह यूरोप के इतिहास में पहली बार सामने आया, इसलिए विद्वानों और खोजकर्ताओं ने माना है कि पश्चिम का नवजागरण सीधे तौर पर अरबों की देन है। ब्रीफ़ॉल्ट (Briffault) ने लिखा है कि हमारे विज्ञान के लिए अरबों की देन केवल यह नहीं है कि उन्होंने क्रांतिकारी विचारधारा और सोच दी, बल्कि विज्ञान के लिए अरब संस्कृति की देन इससे भी ज़्यादा है। विज्ञान अपनी उपस्थिति और अस्तित्व के लिए अरबों का शुक्रगुज़ार एवं कृतज्ञ है।

The debt of our science to that of the Arabs does not consist in startling discoveries of revolutionary theories. Science owes a great deal more to Arab culture. It owes its existence.

[Briffault, *Making of Humanity,* p. 190]

ब्रीफ़ॉल्ट ने आगे लिखा है कि यह बहुत ज़्यादा संभव है कि अरबों के बिना आधुनिक औद्योगिक सभ्यता (modern industrial civilization) सिरे से पैदा ही न होती।

It is highly probable that but for the Arabs, modern industrial civilization would never have arisen at all.

(Briffault, *Making of Humanity*, p. 202)

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने लिखा है कि पुस्तकालय इस्लामी समाज का एक महत्वपूर्ण और ख़ास पहलू था। बहुत सारे ऐसे संस्थान मौजूद थे, जिनके पास एक लाख से अधिक पुस्तकें मौजूद होती थीं। वह मूल साहित्य (literature) जिसने यूरोप का नवजागरण पैदा किया, उसका बड़ा भाग मुस्लिम पुस्तकालयों की अरबी पुस्तकों के अनुवाद से प्राप्त किया गया था।

Most of the classical literature that spurred the European Renaissance was obtained from translations of Arabic manuscripts in Muslim libraries.

(*The Encyclopaedia Britannica,* Vol. 15, p. 646)

कुछ लोगों के अनुसार, अरबों का कारनामा अधिक-से-अधिक यह है कि उन्होंने यूनानी ज्ञान-विज्ञान को अनुवाद के माध्यम से यूरोप की ओर स्थानांतरित किया। प्रोफ़ेसर हिट्टी ने लिखा है कि यूनानी संस्कृति की धारा को स्पेन और सिसली के अरबों के माध्यम से यूरोप की ओर मोड़ दिया गया, जहाँ उसने यूरोप में नवजागरण पैदा करने में मदद की।

This stream (of Greek culture) was redirected into Europe by the Arabs in Spain and Sicily, whence it helped create the Renaissance of Europe.

[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London,1970), p. 307]

वैसे यह बात सही नहीं है, क्योंकि यूनानी दार्शनिकों से अरबों को जो चीज़ मिली थी, वह सैद्धांतिक तर्क थी, न कि जाँच-प्रयोग और अनुभव वाला ज्ञान-विज्ञान (experimental knowledge)। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यूनानियों से दर्शनशास्त्र पाया था। उन्होंने यूनानियों से विज्ञान नहीं पाया था। विज्ञान, जैसा कि अभी हम इसे समझते हैं, यह उनके यहाँ मौजूद ही नहीं था। विज्ञान या प्रायोगिक ज्ञान मुसलमानों की खोज है। इतिहास में पहली बार वह एक जाति की हैसियत से इस ज्ञान तक पहुँचे और दूसरी जातियों को इसे स्थानांतरित किया, विशेषतः यूरोप को।

बर्ट्रेंड रसेल ने ठीक ही लिखा है कि विज्ञान अरबों के समय तक दो पहलू रखता था—

1. हमें इस योग्य बनाना कि हम चीज़ों को जानें।

2. हमें इस योग्य बनाना कि हम चीज़ों को करें।

यूनानी लोग, आर्किमिडीज़ को छोड़कर, इन दो में से केवल पहली चीज़ में दिलचस्पी रखते थे। विज्ञान के व्यावहारिक उपयोग में दिलचस्पी सबसे पहले अंधविश्वास और जादू के माध्यम से आई।

Science, ever since the time of the Arabs, has had two functions:

(1) to enable us to know things and

(2) to enable us to do things.

The Greeks, with the exception of Archimedes, were only interested in the first of these…interest in the practical uses of science came first through superstition and magic.

(Bertrand Russell, *The Impact of Science on Society,* p. 29)

बर्ट्रेंड रसेल ने आगे लिखा है कि आज के शिक्षित लोगों को यह एक खुली हुई सच्चाई मालूम होती है कि किसी बात को मानने से पहले उसकी जाँच-परख की जाए, न कि केवल परंपरागत या पुराने चलन के तौर पर उसे मान लिया जाए। यह पूरी तरह से एक आधुनिक सोच है, जो शायद ही 17वीं सदी से पहले अपनी मौजूदगी रखती थी। अरस्तू ने दावा किया कि औरतों के मुँह में कम दाँत होते

हैं। हालाँकि उसने दो विवाह किए, लेकिन वह ऐसा न कर सका कि अपनी पत्नियों के मुँह को खोलकर देखे और जाँच व निरीक्षण की बुनियाद पर अपनी राय सामने रखे।

बर्ट्रेंड रसेल ने इस प्रकार के बहुत से उदाहरण देते हुए लिखा है कि अरस्तू ने बिना जाँच-पड़ताल के बहुत-सी बातें कह दीं और बाद के लोग भी लगातार बिना जाँच के उन बातों को दोहराते रहे।

(Bertrand Russell, *The Impact of Science on Society,* p. 17)

मानसिक रुकावट

विज्ञान के लिए आवश्यक है कि चीज़ों की प्रकृति और विशेषता जानने के लिए उन पर प्रयोग के माध्यम से उनका ध्यानपूर्ण अवलोकन और अनुभव किया जाए, लेकिन प्राचीन समुदायों में इसका माहौल मौजूद न था। चूँकि ईश्वर के सिवा दूसरी चीज़ों में भी पवित्रता की विशेषता है, ऐसा मानने के कारण यह हुआ कि सभी चीज़ें लोगों की दृष्टि में पवित्र, पूज्य और रहस्यमय हो गईं। इसके परिणामस्वरूप हर जाति और समुदाय के अंदर जादू, अंधविश्वास और ईश्वर के सिवा दूसरी चीज़ों, प्राणियों और व्यक्तियों को पवित्र तथा पूज्य मानने का आम रिवाज हो गया।

यह मानसिकता और सोच, चीज़ों की जाँच-पड़ताल और वैज्ञानिक ढंग की खोज एवं जाँच-प्रयोग (scientific research) के कामों में रुकावट बन गई। अगर लोगों के ज़हन में यह विश्वास बैठा हुआ हो कि घटनाएँ जादू के बल पर होती हैं या चीज़ों में रहस्यमय ढंग की दैवी या ईश्वरीय विशेषताएँ छुपी हुई हैं तो ऐसी स्थिति में उनके अंदर जाँच-पड़ताल की मानसिकता नहीं उभर सकती। ऐसी स्थिति में वही चीज़ उभरेगी, जिसे बर्ट्रेंड रसेल ने जादू और अंधविश्वास से स्पष्ट किया है।

प्राचीनकाल के अरब स्वयं भी इसी प्रकार के अंधविश्वास में सम्मिलित थे। यह अंधविश्वास दूसरे समुदायों की तरह स्वयं उनके लिए भी मानसिक विकास की राह में रुकावट बना हुआ था। इस्लाम के माध्यम से जब उनके अंदर बौद्धिक

क्रांति आई तो उनके बीच से यह मानसिक रुकावट (mental block) समाप्त हो गई। अब वे चीज़ों को केवल चीज़ के रूप में देखने लगे, जबकि इससे पहले हर चीज़ उन्हें पवित्र, पूज्य और रहस्यमय दिखाई दे रही थी। यही वह वैचारिक क्रांति है, जिसने अरबों में पहली बार वैज्ञानिक सोच पैदा की और इसमें तरक़्क़ी करके वे सारी दुनिया के लिए उस चीज़ को देने वाले बने, जिसे आधुनिक समय में विज्ञान कहा जाता है।

भौतिक विज्ञान

20वीं सदी के प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने यह सवाल उठाया कि प्राकृतिक चीज़ों और नियमों को प्रयोग करने का दूसरा नाम विज्ञान है, फिर प्रकृति को नियंत्रित करने और उसे इंसान के प्रयोग में लाने में इतनी देर क्यों लगी, जबकि यह करोड़ों वर्षों से हमारी दुनिया में मौजूद थी?

फिर उसने स्वयं ही इसका उत्तर दिया है कि प्राचीन समय में प्राकृतिक चीज़ें और घटनाएँ इंसान के लिए उपासना का विषय बनी हुई थीं और जिस चीज़ को इंसान उपासना की चीज़ समझ ले, ठीक उसी समय वह उसे जाँच-पड़ताल, खोज और प्रयोग की चीज़ नहीं समझ सकता।

अर्नोल्ड टॉयनबी ने ठीक ही लिखा है कि प्राचीन इंसान के लिए प्रकृति केवल प्राकृतिक संसाधनों के एक ख़ज़ाने के समान न थी, बल्कि वह देवी थी। वह उनके लिए जगत जननी और धरती माँ थी। धरती पर फैले हुए पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ, उसकी सतह पर घूमने वाले जीव-जंतु, उसके अंदर छुपे हुए खनिज पदार्थ सब-के-सब ईश्वरीय विशेषताओं के मालिक थे। यही हाल सारी प्राकृतिक चीज़ों का था। जल-स्रोत, झरने, नदियाँ और समुद्र, पहाड़, भूकंप और बिजली की गरज व चमक, सभी देवी-देवता थे। यही प्राचीनकाल में सारी मानवता का धर्म था।

For ancient man nature was not just a treasure trove of 'natural resources,' but a goddess, 'Mother Earth.' And the vegetation that sprang from the earth, the animals that roamed the earth's surface, and the minerals hiding in the earth's bowels, all partook of nature's divinity, so did all natural phenomena—springs and rivers and the sea; mountains; earthquakes and lightning and thunder. Such was the original religion of all mankind.

(Arnold J. Toynbee quoted in *Reader's Digest,* March 1974)

जिस प्राकृतिक जगत को इंसान देवी-देवता या ईश्वर की दृष्टि से देखता हो, उसे वह शोध और खोज की दृष्टि से नहीं देख सकता। टॉयनबी ने ऊपर लिखी ऐतिहासिक घटना को बताते हुए यह माना है कि प्राकृतिक चीज़ों की पवित्रता के उस युग को जिसने समाप्त किया, वह विशुद्ध एकेश्वरवाद का विश्वास और आस्था थी। एकेश्वरवाद के विश्वास ने प्रकृति को ईश्वर की पदवी से उतारकर सृष्टि के पद पर रख दिया। प्राकृतिक जगत को उपासना की चीज़ क़रार देने के बजाय उसे जाँच-पड़ताल और खोज की चीज़ क़रार दे दिया।

एकेश्वरवाद का यह दृष्टिकोण पहले दौर में सभी पैग़ंबर पेश करते रहे। तब भी पिछले पैग़ंबरों के युग में एकेश्वरवाद की क्रांति केवल व्यक्तिगत स्तर की घोषणा तक सिमटी रही, वह आम लोगों की लोकव्यापी क्रांति के स्तर तक नहीं पहुँची। पैग़ंबर-ए-इस्लाम और आपके साथियों के प्रयासों ने एकेश्वरवाद के विश्वास और आस्था को आम लोगों की क्रांति के स्तर तक पहुँचा दिया। इसके बाद उसके अनिवार्य परिणाम के तौर पर प्राकृतिक जगत के बारे में पवित्रता की मानसिकता समाप्त हो गई। अब इंसान ने प्रकृति को उस दृष्टि से देखना शुरू किया कि वह उसे जाने और उसे अपने काम में लाए। यह कार्य रचनात्मक ढंग से लगातार जारी रहा। कभी धीमी रफ़्तार से और कभी तेज़ रफ़्तार से, यहाँ तक कि वह आज के विज्ञान के युग तक पहुँच गया।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) में 'भौतिक विज्ञान का इतिहास' के तहत लिखा है कि यूनानी विज्ञान दूसरी सदी के बाद बाधा और गतिरोध का शिकार हो गया, क्योंकि रूमियों को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। सामाजिक दबाव, राजनीतिक अत्याचार और चर्च के ज़िम्मेदारों की विज्ञान-विरोधी पॉलिसी का यह परिणाम हुआ कि यूनानी विद्वान अपने देश को छोड़कर पूर्व की ओर चले गए।

7वीं सदी में जब इस्लाम का उदय हुआ तो इस्लामी दुनिया में अंततः इस प्रकार के विद्वानों का सम्मान के साथ स्वागत किया गया। महत्वपूर्ण यूनानी पुस्तकों में अधिकतर को अरबी भाषा में अनूदित कर उन्हें नष्ट होने से बचा लिया गया। अरबों ने प्राचीन यूनानी ज्ञान एवं विज्ञान पर कुछ बहुत विशेष और महत्वपूर्ण बढ़ोतरी की। 12वीं और 13वीं सदी में जब पश्चिमी यूरोप में यूनानी ज्ञान-विज्ञान के प्रति दिलचस्पी पैदा हुई तो यूरोप के विद्वान शिक्षा और अध्ययन के लिए मुस्लिम-स्पेन जाने लगे। अरबी पुस्तकों के लैटिन भाषा में अनुवाद के सैलाब से पश्चिमी यूरोप में विज्ञान को फिर से ज़िंदगी मिली…

मध्ययुग के विद्वान और वैज्ञानिक योग्यता एवं महारत के उच्च स्तर तक पहुँचे और उन्होंने 16वीं एवं 17वीं सदी की वैज्ञानिक क्रांति की ज़मीन तैयार की।

scientists of the Middle Ages reached high levels of sophistication and prepared the ground for the scientific revolution of the sixteenth and seventeenth centuries.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol.14, p. 385]

फ्रांसीसी सामाजिक विज्ञानी गुस्ताव ले बॉन ने अपनी पुस्तक 'सिविलाइज़ेशन ऑफ़ द अरब' में लिखा है कि यूरोप में अरबी ज्ञान-विज्ञान सलीबी जंगों (Crusades) के माध्यम से नहीं पहुँचा, बल्कि यह अंदुलुस (स्पेन), सिसली और इटली के माध्यम से पहुँचा। 1230 ई० में टोलेडो (स्पेन) के मुख्य धर्माध्यक्ष आर्कबिशप रेमंड (St. Raymond, Spain) की अध्यक्षता में अनुवाद के लिए संस्थाएँ (बार्सिलोना और ट्यूनिस में) बनाई गईं, जिन्होंने

प्रसिद्ध अरबी पुस्तकों का अनुवाद लैटिन भाषा में किया। इन अनुवादों से यूरोप की आँखों को एक नई दुनिया दिखाई देने लगी।

14वीं सदी तक इस अनुवाद-कार्य का सिलसिला जारी रहा। न केवल अल-राज़ी, इब्न सीना (Avicena) और इब्न रूश्द (Averroes) इत्यादि की पुस्तकें, बल्कि गैलेन (जालीनूस), हिप्पोक्रेट्स, प्लेटो, अरस्तू, यूक्लिड्स और टॉलेमी इत्यादि की पुस्तकों का भी अरबी भाषा से लैटिन भाषा में अनुवाद किया गया। डॉक्टर गिलकिर्क ने उस समय के इतिहास पर लिखी अपनी पुस्तक में तीन सौ से अधिक अरबी पुस्तकों का लैटिन भाषा में अनुवाद होने की चर्चा की है। (तमद्दुन-अरब)

दूसरे पश्चिमी विद्वानों ने और अधिक स्पष्ट रूप में इस ऐतिहासिक सच्चाई को स्वीकार किया है। उदाहरण के तौर पर— रॉबर्ट ब्रिफॉल्ट ने लिखा है कि यूनानियों ने सिस्टम पैदा किया, इसके आम प्रयोग का विचार दिया, नियम और सिद्धांत निर्धारित किए, लेकिन लंबे समय के अवलोकन की मेहनत और जाँच-प्रयोग द्वारा खोज का काम यूनानी स्वभाव के लिए बिल्कुल अजनबी था। वैज्ञानिक प्रगति के प्रसिद्ध इतिहासकार जॉर्ज सार्टन लिखते हैं कि जिस चीज़ को हम विज्ञान कहते हैं, इसकी मूल और सबसे बड़ी कामयाबी, जो बाद की वैज्ञानिक गतिविधियों को बढ़ावा देने का कारण बनी, वह व्यावहारिक जाँच-प्रयोग, अवलोकन, अनुभव और हिसाब के नए तरीक़ों के परिणामस्वरूप पैदा हुई थी और इसे मूल रूप से मुसलमानों द्वारा अस्तित्व में लाया गया। जाँच-प्रयोग की यह भावना 12वीं सदी तक बनी रही और यह चीज़ यूरोप को अरबों के माध्यम से मिली।

इस प्रकार की जानकारी देते हुए ब्रिफॉल्ट ने कहा है कि हमारे विज्ञान पर अरबों का जो अहसान है, वह केवल यह नहीं है कि उन्होंने हमें क्रांतिकारी दृष्टिकोण के बारे में आश्चर्यजनक खोजें प्रदान कीं, बल्कि विज्ञान इससे भी अधिक अरब संस्कृति का अहसानमंद है, वह यह कि इसके बिना आधुनिक विज्ञान का अस्तित्व ही न होता।

(*Briffault, Making of Humanity,* p-190)

ब्रिफॉल्ट के इन व्यख्यानों को वैज्ञानिक प्रगति और विकास के प्रसिद्ध इतिहासकार जॉर्ज सार्टन ने मज़बूती दी है। इस्लामी सभ्यता और मुसलमानों के कामों ने वैज्ञानिक इतिहास की धारा को किस प्रकार प्रभावित किया, उनके इस योगदान को जॉर्ज सार्टन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ साइंस' के तीन खंडों में दर्शाया है।

(lntroduction to the History of Science, 3 Volumes, George sarton. Baltimore, Williams and Walkins, 1945)

जॉर्ज सार्टन ने लिखा है कि मध्ययुग की मूल और सबसे बड़ी सफलता जाँच-प्रयोग की भावना को पैदा करना था। जाँच-प्रयोग और अनुसंधान की यह भावना वास्तव में मुसलमानों ने पैदा की, जो 12वीं सदी तक जारी रही और यह चीज़ यूरोप को अरबों के माध्यम से मिली। निःसंदेह आधुनिक विज्ञान आधुनिक दुनिया के लिए इस्लामी सभ्यता की सबसे बड़ी और महानतम देन है।

इस्लाम की देन

इस्लाम ने इस संबंध में दो सबसे महत्वपूर्ण काम अंजाम दिए हैं— इनमें से एक है मानसिक रुकावट को दूर करना, जो विकास की राह में रुकावट बनी हुई थी और दूसरा है व्यावहारिक आधार पर विकास के नए युग का आरंभ करना।

मानसिक रुकावट को दूर करने का अर्थ सभी प्राकृतिक चीज़ों को पवित्रता के पद से हटाना था। यह निःसंदेह सबसे अधिक कठिन कार्य था। यह कार्य पैग़ंबर-ए-इस्लाम के दौर में और ख़लीफ़ा-ए-राशीदून[1] के समय में पूरी तरह से अंजाम पा गया।

---

[1] पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात बारी-बारी से उनके उत्तराधिकार को सँभालने वाले शुरुआती चार ख़लीफ़ाओं अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली को 'ख़लीफ़ा-ए-राशीदून' कहा जाता है।

व्यावहारिक आधार पर विकास का कार्य हालाँकि पहले दौर में शुरू हो चुका था, लेकिन व्यवस्थित तौर पर इसकी शुरुआत अब्बासी हुकूमत के दौर में बैत-अल-हिकमा की स्थापना (832 ई०) के साथ हुई। इसके बाद स्पेन और सिसली में अरबों के शासनकाल में यह काम शानदार रफ़्तार और शक्ति के साथ जारी रहा। आख़िरकार यह यूरोप में पहुँचकर आधुनिक औद्योगिक क्रांति (industrial revolution) का कारण बना।

यह बात आम तौर पर स्वीकार की जाती है कि आधुनिक विकास और इसके परिणामों का रिश्ता औद्योगिक क्रांति से है। यह एक सच्चाई है कि यह सारा विकास औद्योगिक क्रांति के गर्भ से प्रकट हुआ है और स्वयं औद्योगिक क्रांति धरती के अंदर छुपी हुई शक्तियों के प्रयोग का दूसरा नाम है। उदाहरण के तौर पर— इंसान ने कोयले को ऊर्जा में बदला। उसने बहते हुए पानी से अलटरनेटर चलाकर बिजली तैयार की। उसने धरती की सतह के नीचे से खनिज पदार्थों को निकालकर उन्हें मशीनों की सूरत में ढाला। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति अस्तित्व में आई।

अब प्रश्न यह है कि ये तमाम चीज़ें तो लाखों वर्ष से धरती के ऊपर मौजूद थीं, फिर इस्लाम से पहले का इंसान इन पर वह अमल और कार्य क्यों न कर सका जिसके परिणामस्वरूप वह उनसे एक विकसित, उन्नत और प्रगतिशील सभ्यता का निर्माण करता। इसका उत्तर केवल एक है और वह यह कि अनेकेश्वरवाद इस कार्य की राह में अलंघनीय बाधा था।

अनेकेश्वरवाद क्या है? अनेकेश्वरवाद नाम है प्राकृतिक जगत और इसकी घटनाओं (Phenomena of Nature) की पूजा-उपासना का। दूसरे शब्दों में, प्रकृति को पवित्र-पूज्य मानने की मानसिकता ही अनेकेश्वरवाद है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद से पहले सारे ज्ञात युगों में इंसान प्रकृति को ईश्वर समझकर उसका उपासक और भक्त बना हुआ था। यूनानी सभ्यता, मिस्री सभ्यता, रोमन सभ्यता, ईरानी सभ्यता अर्थात् सभी प्राचीन सभ्यताएँ अनेकेश्वरवादी सभ्यताएँ थीं। दुनिया की हर प्रभावशाली चीज़, चाहे वह धरती, नदी और पहाड़ हो या सूरज, चाँद और सितारे, सब-के-सब इंसान के लिए पूजा-

उपासना की चीज़ बने हुए थे। इस्लाम ने इन चीज़ों को उपासना की श्रेणी से हटाया। इसके बाद ही उस चीज़ की शुरुआत हुई, जिसे वैज्ञानिक क्रांति कहा जाता है।

अध्याय 3

मुसलमानों का योगदान

विज्ञान की उन्नति के लिए स्वतंत्रता के साथ जाँच-पड़ताल और खोज का वातावरण बहुत आवश्यक है, लेकिन प्राचीनकाल में इंसान की अपनी बनाई हुई कई प्रकार की बेबुनियाद मान्यताओं और आस्थाओं के कारण इस प्रकार का वातावरण बेहद दुर्लभ था। प्राचीनकाल में बार-बार ऐसा हुआ कि एक प्रतिभाशाली और बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन-मनन करते हुए किसी सच्चाई तक पहुँचा, लेकिन जब उसने अपनी खोज और विचार लोगों के सामने प्रस्तुत किए तो लोग उसके विचारों को अपनी अंधविश्वासी आस्थाओं के विरुद्ध पाकर उसके विरोधी ही नहीं, बल्कि शत्रु बन गए। परिणाम यह हुआ कि उसका चिंतन-मनन और अधिक आगे न बढ़ सका।

प्राचीनकाल में नए विचारों के दमन का सबसे बदनाम उदाहरणों में से एक उदाहरण है प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात (Socrates) के लिए सज़ा का आदेश, जिसमें सुकरात को ज़बरदस्ती ज़हर का प्याला पिलाकर उसकी हत्या कर दी गई। उसका अपराध यह था कि वह उन देवताओं को नज़रअंदाज़ करता है और उनकी उपेक्षा करता है, जिन्हें एथेंस शहर के लोग पूजते हैं। लोग उस पर इल्ज़ाम लगाते हैं कि वह धर्म में नए-नए तरीक़े निकालता है और वह यूनान के युवाओं की मानसिकता को ख़राब कर रहा है। सुकरात की हत्या करने की यह घटना 399 ईसा पूर्व में घटित हुई।

इस प्रकार का एक और उदाहरण 17वीं सदी के इटालियन खगोल विज्ञानी गैलीलियो का है। उसने कोपरनिकस के इस दृष्टिकोण की पुष्टि की कि ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं तो रोमन चर्च उसका कड़ा शत्रु बन गया। उस पर धार्मिक अदालत में मुक़दमा चलाया गया। उसे आशंका हो गई कि उसे मृत्यु से कम कोई दंड नहीं दिया जाएगा, इसलिए उसने अपने खगोलीय दृष्टिकोण का

परित्याग कर दिया। उसे न्यायिक जाँच से पहले अपने दृष्टिकोण को ग़लत ठहराने के लिए विवश किया गया। उसने रोमन चर्च की अदालत के सामने इन शब्दों में अपने दृष्टिकोण की घोषणा की—

"मैं गैलीलियो, उम्र 80 वर्ष, आप लोगों के सामने घुटने टेककर, पवित्र इंजील को गवाह बनाकर और इस पर अपने दोनों हाथ रखकर अपनी ग़लती को स्वीकार करता हूँ और सूर्य के चारों ओर ग्रहों की चाल की सच्चाई के दावे को वापस लेता हूँ, इससे इनकार करता हूँ और इस दृष्टिकोण को भद्दा एवं घृणा के योग्य स्वीकार करता हूँ।"

यह कोई अकेली घटना नहीं थी। उस ज़माने में ईसाई विद्वानों का यही आम तरीक़ा था। नई सच्चाइयों की खोज और प्राकृतिक जगत के रहस्यों की तलाश जिसका नाम साइंस है, उनको उन्होंने सदियों तक वर्जित बनाए रखा। ऐसी चीज़ों को काला जादू और शैतानी शिक्षा बताया जाता था। इन परिस्थितियों में यह असंभव था कि खोज और जाँच-पड़ताल का काम सफलता के साथ जारी रह सके। मध्ययुग में यह काम पहली बार मुसलमानों के द्वारा शुरू हुआ, क्योंकि क़ुरआन की शिक्षाओं ने उनके दिमाग़ से वह तमाम रुकावटें समाप्त कर दीं, जो गैलिलियो जैसे लोगों की राह में आड़े आ रही थीं।

इसका एक उदाहरण सौरमंडल (solar system) की परिक्रमा का मामला है। वैज्ञानिक विषयों के मामले में सही दृष्टिकोण का प्रोत्साहन पहली बार इस्लामी क्रांति के बाद हुआ और फिर यह विचारधारा और अधिक विकास करते हुए आधुनिक समय की खोज तक पहुँची।

सौरमंडल

कहा जाता है कि प्राचीन यूनान में एक खगोल विज्ञानी हुआ है, जिसे एरिसटेरकस के नाम से जाना जाता है। उसकी मृत्यु 230 ईसा पूर्व में हुई। उसने सौरमंडल का अध्ययन किया और शायद पहली बार सूर्य-केंद्रीय

(heliocentric) खगोलीय मॉडल का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया अर्थात् यह कि सूरज केंद्र में है और पृथ्वी उसके गिर्द घूम रही है, लेकिन उसके दृष्टिकोण को लोगों के बीच लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। उसके बाद टॉलेमी पैदा हुआ। उसका युग दूसरी सदी ई० है। टॉलेमी ने उसके विपरीत भू-केंद्रीय (geocentric) खगोलीय मॉडल का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया अर्थात् यह कि पृथ्वी केंद्र में है और सूरज इसके गिर्द घूम रहा है।

टॉलेमी के भू-केंद्रीय खगोलीय मॉडल का विचार ईसाइयों को अपनी उस आस्था के ठीक अनुसार महसूस हुआ, जो उन्होने ईसा मसीह के बाद बनाया था और इन मान्यताओं को स्वीकृति की अंतिम मुहर 325 ई० में एशिया माइनर के शहर निक़ाया (Nicaea) की प्रसिद्ध चर्च परिषद में दी गई।

कॉन्सटेंटाइन महान (280 ई० से 337 ई०) के ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद ईसाइयत सारे रोमन साम्राज्य में फैल गई और ईसाई धर्म आधिकारिक राजधर्म बन गया, जिससे इसे ज़बरदस्त शक्ति प्राप्त हो गई। अब ईसाइयों ने टॉलेमी के भू-केंद्रीय खगोलीय मॉडल के दृष्टिकोण का विशेष समर्थन व बचाव किया और एरिसटेरकस के दृष्टिकोण को पूरी तरह से अंधकार में डाल दिया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के शब्दो में—

"इसके बाद उस ब्रह्मांड विज्ञान (cosmology) में और आगे चिंतन-मनन का अवसर शेष न रहा। 17वीं सदी के अंत तक लगभग हर जगह यही दृष्टिकोण पढ़ाया जाता रहा।"

"There was no further scope for cosmology in the model, which continued to be taught and used almost everywhere until the 17th century."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 18, p. 1013]

मुसलमान जो अपवित्र को पूज्य-पवित्र समझने की ग़लती में शामिल नहीं थे, उन्होंने इस मामले पर खुले ज़हन के साथ ख़ालिस बौद्धिक और वैज्ञानिक अंदाज़ में विचार किया और उन्होंने पाया कि सूर्य-केंद्रीय खगोलीय मॉडल का दृष्टिकोण अधिक बुद्धिसंगत है, इसलिए उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया।

एडवर्ड मैक्नॉल बर्न्स ने इस विषय पर चर्चा करते हुए लिखा है कि यह दृष्टिकोण कि सूरज हमारे सौर परिवार के केंद्र में है, अब एक सिद्ध घटना बन चुकी है। यह दृष्टिकोण सबसे पहले सैमोस के एरिसटेरकस (310-230 ईसा पूर्व) ने प्रस्तुत किया था, लेकिन लगभग चार सौ साल बाद एरिसटेरकस का दृष्टिकोण दब गया और टॉलेमी का भू-केंद्रीय खगोलीय मॉडल का दृष्टिकोण लोगों के ज़हन पर हावी हो गया। उसके बाद 12 सौ साल से भी अधिक अवधि तक टॉलेमी का दृष्टिकोण सारी दुनिया में लोगों के मनो-मस्तिष्क पर छाया रहा। 1496 ई० में कोपरनिकस ने बताया कि धरती हमारे खगोलीय मॉडल का केंद्र नहीं है। खगोलीय अध्ययन और खोज के बाद कोपरनिकस इस नतीजे पर पहुँचा कि ग्रह सूरज के गिर्द घूमते हैं, लेकिन चर्च के विरोध के डर से वह अपनी खोज के नतीजों को प्रकाशित करने से 1543 ई० तक रुका रहा।

स्पेन के मुसलमानों ने किसी और विषय का इतना विकास नहीं किया, जितना विज्ञान का। सच तो यह है कि इस क्षेत्र में उनकी सफलताएँ बहुत ही उत्कृष्ट थीं, जो अब तक देखी नहीं गई थीं। स्पेन के मुसलमान खगोल विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, रसायन विज्ञान और चिकित्सा में विशिष्ट एवं असाधारण बौद्धिक योग्यता रखते थे। अरस्तू के प्रति सम्मान के बावजूद वे इससे नहीं हिचकिचाए कि वे उस दृष्टिकोण पर टिप्पणी करें कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र है। उन्होंने इस संभावना को स्वीकार किया कि पृथ्वी अपने अक्ष (axis) पर घूमती हुई सूरज के गिर्द घूम रही है।

Despite their reverence for Aristotle, they did not hesitate to criticize his notion of a universe of concentric spheres with the earth at the centre, and they admitted the possibility that the earth rotates on its axis and revolves around the sun.

[Edward McNall Burns, *Western Civilization* (W.W. Norton & Company Inc, New York, 1955), p. 36]

सौरमंडल के बारे में मुसलमानों का सही दृष्टिकोण तक पहुँचना केवल इसलिए संभव हो सका कि इस्लाम ने चिंतन-मनन की पाबंदी के उस वातावरण

को तोड़ दिया, जो इंसान के लिए मानसिक और बौद्धिक विकास में बाधा बना हुआ था। नक़ली और बनावटी बंधनों के समाप्त होते ही मानवीय चिंतन-मनन का समूह तेज़ी से विकास-यात्रा करने लगा और अंत में उस शानदार वैज्ञानिक युग तक पहुँचा, जहाँ वह वर्तमान सदी में हमें नज़र आ रहा है।

चिकित्सा विज्ञान

इंसान हर दौर में बीमार होते रहे हैं। इसी कारण औषधि और उपचार का तरीक़ा भी किसी-न-किसी रूप में हर युग में पाया जाता रहा है, लेकिन प्राचीनकाल में कभी भी औषधि विज्ञान को वह बड़ी तरक़्क़ी नहीं मिल सकी, जो इस्लाम के बाद के दौर में और फिर वर्तमान समय में इसे हासिल हुई।

कहा जाता है कि विचारणीय रूप से चिकित्सा विज्ञान की शुरुआत प्राचीन यूनान में हुई। प्राचीन यूनान में दो बहुत बड़े-बड़े चिकित्सक पैदा हुए। एक बुक़रात (Hippocrates) और दूसरा जालिनूस (Galen)। बुक़रात का ज़माना 5वीं और चौथी सदी ईसा पूर्व है। हालाँकि बुक़रात के जीवन के बारे में बहुत कम पता है। बाद के लोगों ने यह अंदाज़ा लगाया है कि हिप्पोक्रेट्स यानी बुक़रात शायद 460 ईसा पूर्व में पैदा हुआ और शायद 377 ईसा पूर्व में उसकी मृत्यु हुई। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों और खोजकर्ताओं को उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व होने पर संदेह है। दर्शनशास्त्र, दवा और चिकित्सा की जो पुस्तकें उसके नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके बारे में भी यह संदेह किया गया है कि वह उसी की लिखी हुई हैं या दूसरों ने लिखकर उनको बुक़रात के नाम से नामित कर दिया है।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 8, pp. 942-43]

जालिनूस प्राचीन युग का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक और चिकित्सक समझा जाता है। जालिनूस शायद 129 ई० में पैदा हुआ और 199 ई० में उसकी मृत्यु हुई। रोम में जालिनूस को बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। जालिनूस की अधिकतर लिखित सामग्री नष्ट हो गई और शेष भी तबाह हो गई होती। यह

केवल अरब थे, जिन्होंने 9वीं सदी में उसकी यूनानी पांडुलिपियों (manuscripts) को एकत्र किया और उनका अरबी भाषा में अनुवाद किया। उसके बाद 11वीं सदी में ये अनूदित पुस्तकें यूरोप में पहुँचीं और उन्हें अरबी से लैटिन में अनूदित किया गया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) ने जालिनूस के बारे में अपनी खोज के परिणाम को इन शब्दों में लिखा है कि जालिनूस के अंतिम वर्षों के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त है।

"Little is known of Galen's final years."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 7, p. 850]

चिकित्सा के क्षेत्र में यह बात सही है कि प्राचीन यूनान में कुछ बड़े और बहुत ही बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन बुक़रात और जालीनूस जैसे लोगों का अंजाम बताता है कि प्राचीन यूनान में वह हालात मौजूद न थे, जिनमें ऐसे लोगों को महत्ता और श्रेय प्राप्त हो सके और न ही वह माहौल मौजूद था, जिसमें चिकित्सा विधि-विज्ञान के रूप में उन्नति कर सके। तरह-तरह की अंधविश्वासी आस्थाएँ इस प्रकार की स्पष्ट खोज और जाँच-प्रयोग की राह में बाधा बने हुए थे। उदाहरण के तौर पर— बीमारियों को रहस्यमय शक्तियों से संबंधित करना। वनस्पति और दवा वाले पदार्थों में बहुत-सी चीज़ों को पूज्य और पवित्र मान लेना आदि।

यूनान में चिकित्सा विज्ञान की शुरुआत मसीह के आगमन के लगभग दो सौ वर्ष पहले और दो सौ वर्ष बाद के युग में हुई। इस प्रकार यूनानी चिकित्सा विज्ञान का युग लगभग चार सौ या पाँच सौ वर्ष है। इसके बाद स्वयं यूनान में यह विज्ञान और अधिक आगे न बढ़ सका। यूनान यूरोप का एक देश है, लेकिन यूनानी चिकित्सा विज्ञान की निरंतरता यूरोप में जारी न रह सकी कि वह पश्चिम में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को अस्तित्व में लाने का माध्यम बन सके। यह घटना स्वयं इस बात का सबूत है कि प्राचीन यूनान का माहौल चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के लिए अनुकूल और सहायक न था।

यूनानी चिकित्सा विज्ञान जिसे कुछ अलग-अलग व्यक्तियों ने पैदा किया था, यह सभी प्रयास व्यक्तिगत स्तर पर थे, क़ौम या समुदाय के द्वारा इसे आम

मंज़ूरी नहीं दी गई थी। वह अपने अस्तित्व में आने के बाद लगभग एक हज़ार वर्ष तक अज्ञात पुस्तकों में बंद पड़ा रहा। यहाँ तक कि अब्बासी शासनकाल (750-1258 ई०) में उन पुस्तकों के अरबी अनुवाद किए गए। अरबों ने अधिक वृद्धि के साथ चिकित्सा विज्ञान को नए सिरे से संपादित किया। इसके बाद ही यह संभव हुआ कि यह विज्ञान यूरोप में पहुँचा और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अस्तित्व में आने का माध्यम बना।

इसका कारण यह है कि इस्लामी क्रांति से पहले दुनिया में अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास का बोलबाला था। उस युग का वातावरण इतना प्रतिकूल और विरोधी था कि कोई इंसान अगर ज्ञान-विज्ञान की खोज का काम करता तो लोगों की ओर से उसके हौसले को बढ़ावा नहीं मिलता था, बल्कि अक्सर उसे कड़े विरोध का सामना करना पड़ता था। इस कारण इस प्रकार के प्रयास अगर अलग-अलग व्यक्तियों की सतह पर दिखाई भी देते तो उसे तुरंत और सख़्ती के साथ दबा दिया जाता था। लोगों ने रोग और उपचार का संबंध देवताओं से जोड़ रखा था। ऐसी स्थिति में इलाज की वैज्ञानिक विधि की बात लोगों को अपील नहीं करती थी। इस्लाम के माध्यम से जब दुनिया में एकेश्वरवाद की क्रांति आई, उसके बाद ही यह संभव हुआ कि चिकित्सा विज्ञान की तरक़्क़ी का वह दरवाज़ा खुले, जो अंततः आधुनिक चिकित्सा विज्ञान तक पहुँच जाए।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद का एक कथन इन शब्दों में नक़ल किया गया है— ईश्वर ने जो भी बीमारी उतारी है, उसके साथ उसकी दवा भी उतारी है। जिसने इसे जाना, उसने जाना और जो इससे अनजान रहा, वह इससे अनजान रहा; लेकिन मौत की कोई दवा नहीं। पैग़ंबर-ए-इस्लाम का यह कथन एक क्रांति के पथ-प्रदर्शक की हैसियत से दिखाया गया रास्ता था। इसलिए जैसे ही आपने अपनी ज़बान से इस चिकित्सीय सच्चाई की घोषणा की, दूसरी ओर इतिहास व्यावहारिक रूप से इसके साँचे में ढलना शुरू हो गया।

एक उदाहरण

चेचक दुनिया की सबसे ख़तरनाक और रोग फैलाने वाली बीमारी समझी जाती है। इसमें पहले बुख़ार आता है। दो दिन के बाद दाने निकल आते हैं, जो गड्ढों के रूप में निशान छोड़ जाते हैं। यह अत्यधिक संक्रामक और जानलेवा बीमारी है। अगर व्यक्ति इसके हमले के बाद बच जाए तो वह हमेशा के लिए व्यक्ति की त्वचा को दाग़दार बना देती है। मौजूदा रिकॉर्ड के अनुसार, यह बीमारी चीन में 1122 ईसा पूर्व में पाई गई। हिंदुस्तान की प्राचीन संस्कृत की किताबों में भी इसका वर्णन देखने को मिलता है। बीते समय में कई देशों में यह बीमारी एक ख़तरनाक महामारी के रूप में फूटती रही है। इसने अनगिनत लोगों को अपना शिकार बनाया है। मिस्र का फ़िरऔन (Ramses V) जिसकी मौत 1156 ईसा पूर्व में हुई थी, उसका ममी किया हुआ शरीर एक पिरामिड में पाया गया है, उसके चेहरे पर चेचक के निशान हैं। तब भी हज़ारों वर्षों तक इस खतरनाक बीमारी के बारे में वैज्ञानिक तरीक़े की कोई जाँच-पड़ताल और इसके इलाज की खोज नहीं की जा सकी थी।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 9, p. 280]

अब हम जानते हैं कि चेचक एक छुआछूत की बीमारी है। यह वायरस के संक्रमण से पैदा होती है। अब इसके उपचार की खोज कर ली गई है, जिसका प्रयोग पहले से ही कर लिया जाए तो चेचक के हमले से बचा जा सकता है। यह चिकित्सीय सच्चाई पहली बार इस्लाम के आने के बाद ही केवल 9वीं सदी के अंत में मालूम की जा सकी। पहला प्रसिद्ध नाम जिसने इतिहास में चेचक के इलाज की खोज की और उसकी चिकित्सीय जाँच की, वह मशहूर अरब चिकित्सक अल-राज़ी (865-925 ई०) है। वह वर्तमान तेहरान (ईरान) के निकट शहर 'रय' में पैदा हुआ। उसने इस जानलेवा बीमारी के उपाय की खोज में गहरी जाँच-पड़ताल की और विशुद्ध चिकित्सीय दृष्टिकोण से इस बीमारी के बारे में पहली चिकित्सीय पुस्तक लिखी, जिसका नाम 'अल-जुदरी व अल-हस्बा' था। इस पुस्तक का लैटिन अनुवाद 1565 ई० में वेनिस (इटली) में छपा। इसके बाद यूनानी और दूसरी भाषाओं में अनूदित होकर यह सारे यूरोप में फैली। इसका

अंग्रेज़ी अनुवाद 1848 ई० में लंदन में छपा, जिसका नाम था—A Treatise on Smallpox and Measles.

विद्वानों और खोजकर्ताओं ने माना है कि अल-राज़ी की यह पुस्तक पूरे ज्ञात इतिहास में चेचक के बारे में पहली चिकित्सीय पुस्तक है। इससे पहले इस विषय पर किसी व्यक्ति ने चिकित्सीय जाँच और खोज का काम नहीं किया।

अंग्रेज़ चिकित्सक एडवर्ड जेनर (1749-1823) ने अल-राज़ी की पुस्तक का अनुवाद पढ़ा। इससे उसके अंदर चेचक की बीमारी की चिकित्सीय खोज का विचार पैदा हुआ। यहाँ तक कि उसने 1796 ई० में टीके (vaccination) का वह तरीक़ा खोज निकाला, जिसने सारी दुनिया में प्रसिद्धि हासिल की। अब इंसान ने चेचक को नियंत्रित करने की प्रणाली पर काम करना शुरू किया। यहाँ तक कि इतिहास में पहली बार 1977 में संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की ओर से यह घोषणा की गई कि चेचक की बीमारी को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया गया है।

चेचक की बीमारी को चिकित्सा और इलाज का विषय बनाने में कई हज़ार वर्ष की देरी क्यों हुई?

इसका कारण वही चीज़ थी, जिसे धार्मिक भाषा में अनेकेश्वरवाद कहा जाता है अर्थात् अपवित्र को पूज्य व पवित्र समझना या ग़ैर-ईश्वर में ईश्वरीय विशेषताओं की कल्पना करना।

डॉक्टर डेविड वारनर के शब्दों में—

"In most places in the world, people believe that these diseases are caused because the goddess is angry with their family or their community. The goddess expresses her anger through the diseases. The people believe that the only hope of a cure for these diseases is to make offerings to her in order to please her. They do not feed the sick child or care for him because they fear this will annoy the goddess more. So, the sick child becomes very weak and either dies or takes a long time to get cured. These diseases are caused by virus infection. It is

essential that the child be given plenty of food to keep up his strength so that he can fight the infection."

प्राचीन समय के लोग यह विश्वास करते थे कि चेचक और ख़सरा जैसी बीमारियाँ देवी-देवताओं के क्रोधित होने के कारण पैदा होती हैं। किसी ख़ानदान या जाति से जब देवी-देवता क्रोधित होते हैं तो वे उन्हें इस जानलेवा बीमारी से पीड़ित कर देते हैं। इस बीमारी के माध्यम से वे अपने क्रोध को प्रकट करते हैं। इस विश्वास के कारण लोग यह समझे हुए थे कि इस बीमारी से बचने का एकमात्र उपाय यह है कि देवी-देवताओं को भेंट और चढ़ावे पेश किए जाएँ, ताकि वे प्रसन्न हो जाएँ और प्रसन्न होकर बीमारी को हटा दें। इस विश्वास के कारण वे जानबूझकर और स्वेच्छा से रोगी को कुछ खिलाने और इलाज का उपाय सोचने से परहेज़ करते, क्योंकि उनका सोचना था कि इससे देवी-देवता और ज़्यादा क्रोधित हो जाएँगे।

इस्लाम ने जब बीमारी के बारे में इस अंधविश्वास को तोड़ा और यह बताया कि एक ईश्वर के सिवा किसी को भी लाभ या हानि का कोई सामर्थ्य और क्षमता नहीं। विधाता केवल एक है। उसके सिवा जो है, वह सब-के-सब उसके द्वारा निर्मित चीज़ें और प्राणी हैं, जो उसके बंदे (subjects) हैं। इस्लामी क्रांति के बाद जब इंसान के अंदर यह सोच और मानसिकता उभरी, तब इंसान ने अंधविश्वास के देवता से स्वतंत्र होकर सोचना शुरू किया। इसके बाद ही यह संभव हुआ कि चेचक पर चिकित्सीय जाँच एवं खोज की जाए और इसका इलाज ज्ञात करने का प्रयास किया जाए। दुनिया में जब यह वैचारिक क्रांति आई, उसके बाद ही यह संभव हुआ कि चेचक को चिकित्सा संबंधी खोज और उपचार का विषय बनाया जाए। उसके बाद ही यह संभावना पैदा हुई कि अबू बक्र अल-राज़ी और एडवर्ड जेनर जैसे लोग सामने आए और चेचक का उपचार ज्ञात करके मानवता को इस जानलेवा बीमारी से छुटकारा दिलाया। चेचक के उपचार की खोज तक पहुँचने में वास्तविक बाधा अनेकेश्वरवादी अंधविश्वास और मान्यताएँ थीं और इन अंधविश्वासी धारणाओं को इतिहास में जिसने पहली बार समाप्त समाप्त किया, वह निःसंदेह इस्लाम था।

चिकित्सा विज्ञान के संबंध में मुसलमानों की उपलब्धियों पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं। उदाहरण के तौर पर— फ़िलिप हिट्टी की पुस्तक 'हिस्ट्री

ऑफ़ दि अरब'। इन पुस्तकों में मुसलमानों की चिकित्सा संबंधी उपलब्धियों की जानकारियाँ देखी जा सकती हैं।

भाषा विज्ञान

भाषा से जुड़ी अंधविश्वासी आस्थाओं के कारण भाषा विज्ञान बीते समय में बहुत ही प्रतिकूल और विरोधी परिस्थितियों का शिकार रहा है। यहाँ तक कि हज़ारों वर्षों तक इसकी उन्नति रुकी रही। भाषा विज्ञान के एक विशेषज्ञ डॉक्टर अर्नेस्ट गेल्नर ने लिखा है कि भाषाई दार्शनिकता (linguistic philosophy) में उल्टे तरीक़े की सोच पाई जाती है। वह वास्तविक सोच-विचार को बीमारी समझते हैं और मुर्दा विचार इसके निकट सेहत का नमूना है।

"Linguistic philosophy has an inverted vision which treats genuine thought as a disease and dead thought as a paradigm of health."

प्राचीन समय में आम तौर पर यह माना जाता था कि लेखन-शैली देवताओं की ओर से दिया गया उपहार है, जैसे हिंदुस्तान में 'ब्राह्मी लिपि' की आस्था। शब्द और बोलने का ढंग देवताओं द्वारा निर्धारित किया गया है। इस कारण यह सबसे ऊँची श्रद्धा और सम्मान के योग्य है।

जॉन स्टीवेंस की एक पुस्तक, जिसका नाम 'पूर्व की पवित्र हस्तलिपि' (Sacred Calligraphy of the East) है। इसमें उसने अपनी यह खोज प्रस्तुत की है कि पवित्र हस्तलिपि की आस्था सदियों तक दुनिया में जारी रही। विद्वानों और खोजकर्ताओं के बीच इस बारे में मतभेद है कि लेखन-शैली या हस्तलिपि विद्या सबसे पहले कहाँ पैदा हुई। मिस्र में या चीन में या हिंदुस्तान में या किसी और स्थान पर। फिर भी शब्दकोश के लगभग सभी विद्वान इस बात से एकमत हैं कि सभी प्राचीन जातियों में यह आस्था समान रूप से पाई जाती रही है कि प्राचीन हस्तलिपि विद्या, इसके शब्द और बोलने का ढंग ईश्वरीय चीज़ है। यह पवित्र है और यह देवताओं की भाषा है।

"One idea, however, was universal: writing was divine. It was inherently holy. Writing was the speech of the Gods."

इतिहास का अध्ययन का बताता है कि मानवीय भाषाएँ हज़ारों वर्ष तक अंधविश्वास का शिकार रही हैं। यह मान लिया गया कि कुछ भाषाएँ ईश्वरीय मूल या दिव्य मूल की हैं और उनके बोलने वालों को दूसरी भाषाओं पर एक विशेष दर्जा हासिल है। उदाहरण के तौर पर— यूनानी भाषा के बारे में लंबे समय तक यह समझा जाता रहा कि वह सारी दूसरी भाषाओं से श्रेष्ठ और बेहतर है। यह देवताओं की भाषा है, दूसरी भाषाएँ इसके मुक़ाबले में वहशियों और बर्बर लोगों की भाषाएँ हैं इत्यादि।

यही मामला हिब्रू भाषा का हुआ। यहूदी-ईसाई दुनिया में सदियों तक यह समझा जाता रहा कि हिब्रू भाषा ईश्वर की अपनी भाषा है और दुनिया में यह सबसे पहले बोली गई। वंडर्ली और यूजेन निडा, जिन्होंने भाषाओं पर ईसाई मान्यताओं के प्रभावों का एक विस्तृत अध्ययन किया है, वे अपनी खोज के बारे में लिखते हैं—

"जिन कारणों ने भाषा संबंधी विकास को रोका, उनमें से एक उन प्राचीन ईसाई लेखकों की वह आस्था थी, जो नवजागरण के दौर में प्रभावी रूप से और तीव्रता से छाई रही, वह यह कि दुनिया की सारी भाषाएँ हिब्रू भाषा से निकली हैं।"

"One of the factors, which retarded linguistic progress, was the belief among early Christian writers, and persisting well into the Renaissance era, that all languages were derived from Hebrew."

(William L. Wonderly and Eugene Nida in Linguistics and Christian Missions, Anthropological Linguistics, Vol. 5, pp. 104-144)

ईश्वरीय भाषा (Divine Language) का विचार पूरी तरह से अंधविश्वास की पैदावार है। सच्चाई से इसका कोई संबंध नहीं। जब किसी भाषा के बारे में यह मान लिया जाए कि वह ईश्वर की या देवताओं की भाषा है तो वह पवित्र भाषा की हैसियत प्राप्त कर लेती है। अब वह लोगों की नज़र

में श्रद्धा और सम्मान की चीज़ बन जाती है, न कि खोज और शोध करने की चीज़। इसके बाद उस भाषा की गुण-दोष संबंधी जाँच-परख करना, उसे और आगे बढ़ाने के लिए किसी नए अंदाज़ की वक़ालत करना— यह सब ईश-निंदापूर्ण और धर्म-विरोधी कार्य सिद्ध होता है। यह उसकी पवित्रता को तोड़ने का कार्य बन जाता है। ऐसी हर खोज और जाँच-पड़ताल लोगों को धृष्टता (audacity) दिखाई देने लगती है, न कि उसे आगे बढ़ाने के लिए कोई निष्कपट और गंभीर प्रयास।

अवरुद्ध विकास (stunted growth) की यह स्थिति न केवल प्राचीन भाषाओं के साथ पेश आई, बल्कि प्राचीन समय में सभी क्षेत्रों में मानवीय सोच की स्थिति यही थी। अनगिनत प्रकार की अंधविश्वासी आस्थाएँ थीं, जिन्होंने इंसान के वैचारिक विकास को रोक रखा था। इतिहास में पहली बार जिसने इस प्रतिबंध और रोक को तोड़ा, वह एकेश्वरवाद की क्रांति थी। यह क्रांति सबसे पहले अरब में पैदा हुई। उसके बाद इसका प्रभाव सारी दुनिया में पहुँचा। मानवीय इतिहास अंधविश्वास के युग से निकलकर यथार्थवाद के युग में प्रवेश कर गया।

क़ुरआन में जब यह घोषणा की गई कि एक ईश्वर के सिवा कोई पूजनीय नहीं तो उसी समय सोच-विचार के वैज्ञानिक तरीक़े की शुरुआत हो गई। लोग काल्पनिक और झूठे मानसिक बंधनों से स्वतंत्र होकर चीज़ों के बारे में सोचने लगे। यह सोच-विचार का तरीक़ा आगे बढ़ता रहा, यहाँ तक कि वह इस युग की वैज्ञानिक क्रांति तक पहुँचा।

एक ईश्वर को पूजनीय मानना और दूसरी सभी चीज़ों को पवित्रता का दर्जा देने से इनकार कर देना, यह महत्ता रखता है कि एक ईश्वर के सिवा किसी और चीज़ को पवित्रता का पद प्राप्त नहीं। एक ईश्वर के सिवा जितनी चीज़ें हैं, वह सब-की-सब समान रूप से प्राणी और निर्मित चीज़ें हैं और वे असमर्थ तथा असहाय हैं।

एक ईश्वर के सिवा सभी चीज़ों को अपूजनीय और अपवित्र मान लेना, उन्हें जाँच और खोज का विषय बनाने का कारण बन गया। यही इस्लाम की वह विशेष उपलब्धि है, जो इसे 'आधुनिक युग का निर्माता' ठहरा रही है।

गिनती एवं संख्याएँ

गिनती और संख्याओं के वर्तमान तरीक़े को शुरुआती तौर पर हिंदुस्तान में कुछ लोगों ने स्पष्ट किया। फिर भी यह वह युग था, जबकि हर परंपरा और प्रथा को पवित्र समझ लिया जाता था और हर नई चीज़ को संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। इसलिए गिनती और संख्याओं को लिखने का यह तरीक़ा उस समय के हिंदुस्तान में रिवाज न पा सका। वह केवल कुछ निजी और व्यक्तिगत पुस्तकों में बंद होकर रह गया। लोग पुराने तरीक़े को पवित्र समझकर उसे पकड़े रहे, वे नए तरीक़े को नहीं अपना सके।

इसके बाद जब यह पता चला कि बग़दाद में एक सल्तनत स्थापित हुई है, जो नई खोजों की सराहना और उसका समर्थन करती है, तो एक हिंदुस्तानी यात्री 771 ई० में यात्रा करके बग़दाद गया। उस समय बग़दाद में अब्बासी ख़लीफ़ा अल-मंसूर का शासन था। हिंदुस्तानी यात्री ने अल-मंसूर की सेवा में दो संस्कृत पुस्तिकाएँ प्रस्तुत कीं। उनमें से एक 'सिद्धांत' नामक पुस्तक थी, जो खगोल विज्ञान के बारे में थी। उसे अरबों ने 'सिंदहिंद' का नाम दिया और दूसरी पुस्तक गणित के बारे में थी।

अल-मंसूर के आदेश से मुहम्मद इब्न इब्राहीम अल-फ़ज़ारी ने 796 ई० से 806 ई० के बीच उनका अरबी अनुवाद किया। प्रसिद्ध अरब गणितज्ञ (mathematician) अल-ख़्वारिज़्मी (780-850 ई०) ने इस अरबी अनुवाद को पढ़ा और इसके माध्यम से हिंदू अंक प्रणाली से जानकारी प्राप्त की, जिसमें मूल गिनती नौ (1-9) तक थी और इसके बाद सिफ़र या शून्य को मिलाकर सारी गिनतियाँ बनाने का तरीक़ा बताया गया था। अल-ख़्वारिज़्मी ने इसे हिंदी 'हिंदसा' कहा, जो इसके भारतीय मूल को दर्शाता है और इसे अपनाने की अपील की।

(Philip K. Hitti, *History of the Arabs*, pp. 307-308)

हिंदुस्तानी अंक प्रणाली पर आधारित अल-ख़्वारिज़्मी की पुस्तक का लैटिन अनुवाद 12वीं सदी में बाथ के एडेलार्ड ने 'डी न्यूमरो इनदिको' के रूप में किया। इस प्रकार गिनती का यह रूप यूरोप पहुँचा। अरबों ने हालाँकि इसे

हिंदी हिंदसा कहा था, लेकिन यूरोप में इसे अरबी गिनती (Arabic Numerals) का नाम दिया गया। विचित्र बात है कि अल-ख़्वारिज़्मी की अरबी पुस्तक का नुस्ख़ा व्यर्थ हो गया, लेकिन इसका लैटिन अनुवाद अब भी यूरोप के पुस्तकालयों में मौजूद है।

(Philip K. Hitti, p. 573-74)

प्राचीन समय के यूरोप में रोमन अंक आम प्रयोग में था। वह यूरोप में दो हज़ार वर्ष तक प्रचलित रहा। इस तरीक़े में संख्याओं को अक्षरों के रुप में लिखा जाता था। इसे यूनानियों और कुछ दूसरी प्राचीन जातियों ने अपनाया था और बाद में रूमियों ने अपना लिया। इस तरीक़े में सात अक्षरों (M.D.C.L.X.V.I.) को अलग-अलग रूपों में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए— संख्या 88 को लिखने का रूप यह था— LXXXVIII. इसके परिणामस्वरूप हिसाब-किताब का काम बहुत ही कठिन था, लेकिन यूरोप के लोग रोमन अंक को पवित्र मानते थे। वे इन्हें देवताओं का उपहार समझते थे। इसलिए वे सोच नहीं पाते थे कि इन्हें बदलें या इनमें कोई सुधार करें। अपवित्र संख्याओं को पूज्य व पवित्र मानने का परिणाम यह हुआ कि विज्ञान और गणित के क्षेत्र में वे सैकड़ों वर्ष तक कोई विकास न कर सके। यह इस्लामी क्रांति थी, जिसने पहली बार अंकों और संख्याओं की पवित्रता के तिलिस्म को तोड़ा और फिर यूरोप में विज्ञान और गणित के विकास का दौर शुरू हुआ।

पीसा (इटली) का लियोनार्डो फ़ीबोनाच्ची मध्य युग का सबसे प्रसिद्ध गणितज्ञ है। उसने इतिहास में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की, क्योंकि यही वह व्यक्ति है जिसने यूरोप को हिंदू-अरब अंक प्रणाली से परिचित कराया। उसका युग 12वीं और 13वीं सदी के बीच है।

लियोनार्डो शायद इटली के पीसा में पैदा हुआ। उसके आरंभिक जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। फिर भी बाद के इतिहास में उसने असाधारण रूप से प्रसिद्धि प्राप्त की। लियोनार्डो के लड़कपन के दौरान उसके पिता गुगलिएल्मो, जो पीसा का व्यापारी था, को अल्जीरिया में पीसा के व्यापारियों के समुदाय का वकील या प्रमुख मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया था। उसने अपने बेटे लियोनार्डो को एक अरब गुरु के हवाले कर दिया, ताकि वह उसे हिसाब-किताब की शिक्षा दे। अरब गुरु ने लियोनार्डो को हिंदसा और हिंदू-

अरब अंक का ज्ञान सिखाया। इसके बाद लियोनार्डो ने मिस्र, सीरिया, यूनान, सिसली आदि देशों की यात्रा की। वहाँ उसने विभिन्न संख्यात्मक प्रणालियों और हिसाब-किताब के तरीक़ों का अध्ययन किया, लेकिन अरबी अंकों के जितनी संतोषजनक और बेहतर संख्यात्मक प्रणाली उसे कभी नहीं मिली। उसने प्रसिद्ध अरब गणितज्ञ अल-ख़्वारिज़्मी के लेखों को पढ़ा।

हिंदू-अरब अंक से पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद लियोनार्डो ने एक पुस्तक 'लिबेर अबाची' (Liber Abaci,The Book of Calculation) लिखी। इस पुस्तक के प्रकाशित होने तक 9वीं शताब्दी के अरब गणितज्ञ और खगोलविद अल-ख़्वारिज़्मी की पुस्तक के लैटिन अनुवाद के माध्यम से हिंदू-अरब अंकों को केवल कुछ यूरोपियन बुद्धिजीवी ही जानते थे। लियोनार्डो ने अपनी पुस्तक में बताया कि इस नियम के अनुसार नौ मूल गिनतियाँ हैं— 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और इन गिनतियों के साथ शून्य को मिलाकर कोई भी संख्या बनाई जा सकती है। यह तरीक़ा बहुत शीघ्र यूरोप में व्यापारिक और व्यावसायिक हिसाब-किताब के लिए प्रयोग होने लगा।

बहुत बड़ी संख्या में पुस्तक 'लिबेर अबाची' की कॉपियाँ तैयार की गईं। इसकी लोकप्रियता और प्रसिद्धि ने विज्ञान के समर्थक इटली के राजा फ्रेडरिक-II का ध्यान आकर्षित किया। राजा ने 1220 ई० में लियोनार्डो को अपने पीसा के दरबार में बुलाया। वहाँ उसने राजा के सामने अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए अपनी पसंदीदा अरबी संख्यात्मक प्रणाली को प्रस्तुत किया। अरब अंक के तरीक़े को जिन लोगों ने यूरोप में प्रकाशित किया, उनमें लियोनार्डो का नाम उल्लेखनीय और विशिष्ट है।

(*Encyclopaedia Britannica,* 10/817-18)

विलफ्रेड ब्लंट ने लिखा है कि मान लो कि अगर इस्लाम का तूफ़ान न आया होता तो क्या होता! कोई भी चीज़ नहीं है, जिसने पश्चिम में विज्ञान की उन्नति को इतना रोका हो, जितना बेढंगे रोमन अंकों ने। अरबी अंक जो कि 8वीं सदी के अंत में हिंदुस्तान से बग़दाद पहुँचा था, अगर वह शीघ्र ही पश्चिमी यूरोप पहुँच जाता और वहाँ उसे अपना लिया जाता तो इसका परिणाम यह होता कि बहुत सारी विज्ञान की उन्नति जिसे इटली के 'नवजागरण' से जोड़कर देखा जाता है, वह कई सदियों पहले प्राप्त हो जाती।

And supposing the tide of Islam had not been stemmed? Nothing so delayed the advance of science in the West as the clumsiness of the Roman numerals. Had the Arabic numerals, which had reached Baghdad from India towards the end of the eighth century, been soon afterwards introduced into and adopted by Western Europe as a whole, much of that scientific progress which we associate with the Renaissance in Italy might have been achieved several centuries earlier.

[Wilfrid Blunt, quoted in *The Times* (London), April 2, 1976]

ज़ीरो का दृष्टिकोण : एक स्पष्टीकरण

नई दिल्ली से 22 पेज की एक अंग्रेज़ी पुस्तक छपी है। वह बच्चों और साधारण पाठकों के लिए है। इसका नाम है— ज़ीरो की कहानी

Dilip M. Salwai, *'The Story of Zero'*, Children's Book Trust.

इस पुस्तक में बताया गया है कि ज़ीरो का विचार और उसकी खोज भारत में की गई। इससे पहले बड़ी गिनतियों को बताने के लिए कोई आसान तरीक़ा मौजूद न था। एक तरीके के अनुसार, कुछ विशेष गिनतियों के लिए कुछ शब्द तय किए गए थे। उदाहरण के लिए— 1,000 के लिए— सहासरा, 10,000 के लिए— आयोता, 100,000 के लिए— लकशा, 1,000,000 के लिए— कोटी आदि। ज़ीरो के आविष्कार ने गणित के विज्ञान में एक क्रांति पैदा कर दी। अब बड़ी गिनतियों को बताना बहुत ही आसान हो गया।

ब्रह्मगुप्त (598-660 ई०) मुल्तान में पैदा हुए। उन्होंने पहली बार ज़ीरो के प्रयोग की विधि पर काम किया और इसे समझाने का प्रयास किया, लेकिन उनके तरीक़े में कुछ कमी थी। इसके बाद भास्कर (1114-1185 ई०) बीजापुर में पैदा हुए। उन्होंने संस्कृत में एक पुस्तक 'लीलावती' लिखी। इस पुस्तक में ज़ीरो के नियम और सिद्धांत का बहुत ही सरल शैली में वर्णन किया गया था।

आर.के. मूर्ति (R. K. Murthi) ने इस पुस्तक पर समीक्षा और टिप्पणी करते हुए लिखा है कि यह बात हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान के अहसास को बढ़ाती है कि ज़ीरो का नज़रिया हिंदुस्तान में पैदा हुआ।

"It boosts our sense of national pride to note that the zero was conceived of in India."

[*The Times of India* (New Delhi), January 30, 1989, p. 6]

लेखक इस पुस्तक के माध्यम से अपने पाठकों को बताते हैं कि हिंदुस्तानी गिनती सबसे पहले हिंदुस्तान से स्पेन में प्रविष्ट हुई, फिर वह इटली, फ्रांस, इंग्लैंड और जर्मनी पहुँची। हिंदुस्तानी गिनती को पश्चिम में पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया। उनका हिंदुस्तानी गिनती को अपनाया जाना गणित और विज्ञान के लिए एक महत्वपूर्ण और निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ।

"The Indian numbers first entered Spain, then Italy, France, England and Germany… Indian numbers were accepted completely… Their adoption turned out to be the turning point in the history of mathematics and science."

[Dilip M. Salwai, *Story of Zero* (New Delhi)]

यह सही है कि ज़ीरो का विचार आरंभिक रूप में हिंदुस्तान में पैदा हुआ, लेकिन यह सही नहीं कि वह हिंदुस्तान से सीधे पश्चिमी दुनिया में पहुँचा। यह तरीक़ा अरबों के माध्यम से पश्चिमी दुनिया में पहुँचा था। यही कारण है कि पश्चिम में इसे हिंदुस्तानी गिनती के बजाय 'अरबी गिनती' (Arabic Numerals) कहा गया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) का कहना है, "अरबी अंक अर्थात् ज़ीरो से लेकर नौ तक की गिनती की शुरुआत हो सकता है कि हिंदुस्तान में हुई हो, लेकिन पश्चिमी दुनिया में वह अरब के रास्ते से पहुँची।"

Arabic Numerals— the numbers 0,1,2,3,4,5,6,7,8,9 they may have originated in India, but were introduced to the western world from Arabia.

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. I, p. 469]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में दूसरी जगह वर्णन है—

यूरोप के सुशिक्षित और विद्वान वर्ग तक यह अंक-प्रणाली 9वीं सदी के अरब गणितज्ञ अल-ख़्वारिज़्मी के लेखों के माध्यम से पहुँची। अल-ख़्वारिज़्मी ने हिंदुस्तानी गिनती के नियम और सिद्धांत को अरबी में लिखा। फिर यह अरबी पुस्तक लैटिन भाषा में अनूदित होकर यूरोप तक पहुँची।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 10, p. 817]

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि मुहम्मद इब्न मूसा अल-ख़्वारिज़्मी जो गणित और खगोल विज्ञान की संस्कृत पुस्तकों के अनुवादक थे, उन्होंने 830 ई० में एक पुस्तक प्रस्तुत की। 12वीं सदी में इस पुस्तक का अनुवाद अरबी से लैटिन भाषा में 'Algoritmi de numero Indorum' के नाम से किया गया। यही वह पुस्तक थी, जिसके माध्यम से पश्चिम ने पहली बार उस चीज़ को जाना, जिसे हम 'अरब अंक-प्रणाली' कहते हैं। हालाँकि वास्तव में इसे 'हिंदुस्तानी अंक-प्रणाली' कहना चाहिए। इसी लेखक (अल-ख़्वारिज़्मी) ने 'अल-जबरा' पर एक पुस्तक लिखी, जो 16वीं सदी तक पश्चिम में पाठ्यक्रम की पुस्तक के रूप में प्रयोग की जाती रही।

[Bertrand Russell, *A History of Western Society* (London, 1984), p. 416]

ज़ीरो का दृष्टिकोण हालाँकि हिंदुस्तान में बना, लेकिन कई सौ वर्ष तक इसे स्वयं हिंदुस्तान में पहचान और मान्यता प्राप्त नहीं मिली। हिंदुस्तान में भी इसकी लोकप्रियता उस समय बढ़ी, जबकि सबसे पहले अरबों ने और फिर यूरोप ने इसे अपना लिया। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका का शोध-लेखक लिखता है कि यह खोज, जो शायद हिंदुओं ने की, गणित के इतिहास में बड़ी महत्ता रखती है। हिंदू साहित्य इस बात की गवाही देता है कि ज़ीरो, संभव है कि ईसा मसीह के जन्म से पहले मालूम रहा हो, लेकिन इस प्रतीक या चिह्न के साथ ऐसा कोई भी अभिलेख या पांडुलिपि नहीं पाई गई है, जो 9वीं शताब्दी से पहले की हो।

"The invention, probably by the Hindus, of the digit zero, has been described as one of the greatest importance in the history of mathematics. Hindu literature gives evidence that the zero may have been known before the birth of Christ, but no inscription has been found with such a symbol before the ninth century."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. I, p. 1175]

यह बात सही है कि ज़ीरो को प्रयोग करने का विचार और समझ सबसे पहले एक हिंदुस्तानी मस्तिष्क के अंदर पैदा हुई, लेकिन उस समय हिंदुस्तान में संभव की सीमा तक अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास का बोलबाला था। हर चीज़ के साथ रहस्यमय आस्थाएँ जुड़ गई थीं। नई चीज़ों और नए आविष्कारों को घृणा और अप्रसन्नता की दृष्टि से देखा जाता था। यही वह कारण रहे कि प्राचीन हिंदुस्तान में ज़ीरो के विचार का आदर नहीं हुआ और उसे आम स्वीकार्यता प्राप्त नहीं हुई। वह एक व्यक्ति की एकमात्र खोज बनकर रह गया, जो सामाजिक मान्यता और लोकप्रियता के स्तर तक नहीं पहुँचा।

इस्लाम ने जब अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास के वातावरण को समाप्त किया तो वहाँ जिस प्रकार दूसरी नई चीज़ों का स्वागत हुआ, उसी प्रकार ज़ीरो के विचार का भी स्वागत किया गया। घर पर उपेक्षित हिंदुस्तान के बीज को उपजाऊ धरती मुस्लिम बग़दाद में मिली। वहाँ वह पेड़ बना और फिर मुसलमानों ही के माध्यम से स्पेन पहुँचकर यूरोप में फैल गया।

खेती और सिंचाई

प्राचीनकाल में जिन प्राकृतिक चीज़ों को ईश्वरीय विशेषताओं का धारक समझ लिया गया था, इनमें से एक नदी भी थी। नदियों के बारे में यह विश्वास था कि उनके अंदर रहस्यमय प्रकार की ईश्वरीय आत्मा पाई जाती है। यही आत्मा नदियों को चलाती है और नदियों को इंसान के लिए लाभकारी या हानिकारक बनाती है।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 17, p. 129]

प्राचीन यूनान में स्कमनड्रोस नदी के बारे में यह विश्वास था कि वह वंश बढ़ाने, प्रजननशीलता और पैदावार की योग्यता रखती है । इसलिए चौथी सदी ईसा पूर्व का एक यूनानी वक्ता एस्किंस जो एक एथेनियन राजनेता था, कहता है कि हमारी लड़कियाँ शादी से पहले इस पवित्र नदी में नहाती हैं और कहती हैं, "स्कमनड्रोस, मेरे कुँवारेपन को स्वीकार कर।" कई देशों में ऐसी जादुई रस्म

और संस्कार निभाने का रिवाज रहा है, जिसमें नदी का पानी महिला को गर्भवती बनाने के लिए प्रयोग किया जाता था।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 12, p. 882]

नदियों को पवित्र मानने के कारण यह हुआ कि लोग नदियों को पूजने लगे। वे उनके नाम पर चढ़ावा, बलि और क़ुरबानी प्रस्तुत करने लगे। इस प्रकार नदियों की पवित्रता की आस्था ने नदियों के बारे में जाँच-पड़ताल और खोज की मानसिकता को पैदा नहीं होने दिया।

लोग नदियों को पवित्र और पूजनीय देवी के रूप में देखते थे, न कि एक साधारण प्राकृतिक और भौगोलिक घटना के रुप में, जिसे एक सादा मानवीय उपाय और योजना के माध्यम से प्रयोग किया जा सके। यही कारण है कि प्राचीनकाल में नदियों के पानी का प्रयोग कृषि के क्षेत्र में बहुत ही सीमित रहा। सिंचाई का इतिहास आश्चर्यजनक रूप से इंसान के आधुनिक इतिहास से संबंध रखता है।

इस्लाम के माध्यम से जब एकेश्वरवाद की क्रांति आई और इंसान यह बात जान गया कि नदी एक रचना या सृजन है, न कि सृष्टिकर्ता या रचयिता। वह एक रचना है, न कि ईश्वर। इसके बाद ही यह संभव हुआ कि इंसान बड़े पैमाने पर नदियों को अपने लाभ के लिए प्रयोग करने की बात सोच सके। यही कारण है कि हम इतिहास में यह पढ़ते हैं कि स्पेन के मुसलमानों ने जितने बड़े पैमाने पर सिंचाई की विकसित प्रणाली को स्थापित किया, उसका कोई दूसरा उदाहरण उनसे पहले किसी अन्य जाति में देखने को नहीं मिलता।

स्पेन के मुसलमानों ने कृषि के काम में इतनी उन्नति की कि वह एक नियमित विज्ञान बन गया। उन्होंने पेड़-पौधों का अध्ययन किया और मिट्टी की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की। स्पेन की लाखों वर्ग मील की धरती जो वीरान पड़ी हुई थी, मुसलमानों ने उसे फलदार वृक्षों और लहलहाते हुए खेतों के रूप में बदल दिया। यह एक शानदार हरित क्रांति थी।

प्रोफ़ेसर फिलिप के० हिट्टी लिखते हैं—

स्पेन के मुसलमानों ने नहरों का निर्माण किया और अंगूर की खेती की तथा साथ में दूसरे पौधों और फलों, चावल, ख़ूबानी, आड़ू, अनार, संतरा, गन्ना, कपास और ज़ाफ़रान की खेती की शुरुआत की। प्रायद्वीप (peninsula) के दक्षिण-पूर्वी मैदानी क्षेत्र, जो अच्छी जलवायु और मिट्टी के

क्षेत्र थे, ग्रामीण और शहरी गतिविधियों के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में विकसित हुए। यहाँ गेहूँ और अन्य अनाज के साथ-साथ ज़ैतून तथा कई प्रकार के फलों की खेती को किसानों द्वारा विकसित किया गया, जिन्होंने मालिकों के साथ हिस्सेदारी पर खेतों में काम किया।

स्पेनी कृषि को अरबों ने जो उन्नति दी, उसकी चर्चा करते हुए प्रोफ़ेसर हिट्टी ने लिखा है—

यह कृषि की उन्नति मुस्लिम स्पेन की शानदार उपलब्धियों में से एक थी और वह इस देश के लिए अरबों का एक स्थायी उपहार था। स्पेनी बगीचे आज भी उनकी निशानी के रूप में सुरक्षित हैं।

This agricultural development was one of the glories of Moslem Spain and one of the Arab's lasting gifts to the land, for Spanish gardens have preserved to this day a 'Moorish' imprint.

(*History of the Arabs*, p. 528)

चावल, गन्ना, रुई, ज़ाफ़रान, अनार, आड़ू, सफ़तालू आदि जो वर्तमान स्पेन में बहुतायत पाए जाते हैं, वह स्पेनिश मुसलमानों के माध्यम से ही स्पेन को मिले। उन्होंने अंदलुसिया और इसाबेला के सूबों में ज़ैतून (olive) और ख़ुरमा (bitter orange) की खेती में बहुत उन्नति की। ग़रनाता और मालागा के क्षेत्र में अंगूरों की पैदावार बड़े पैमाने होने लगी।

फ्रांसीसी लेखक चार्ल्स सिनोबोस ने लिखा है कि स्पेनी अरबों ने नहरों के माध्यम से सिंचाई के तरीक़े को अपनाया। उन्होंने बड़े-बड़े कुएँ खुदवाए। जिन लोगों ने पानी के नए स्रोतों की खोज की, उन्हें बड़े-बड़े इनाम दिए गए। स्पेन में सिंचाई के लिए बड़ी-बड़ी नहरें बनवाईं और फिर उनसे छोटी-छोटी शाख़ें निकालीं। इसी कारण वैलेंसिया का बंजर मैदानी क्षेत्र हरा-भरा और फलदार क्षेत्र बन गया। उन्होंने नहर और सिंचाई का स्थायी विभाग स्थापित किया, जिससे नहरों पर सिंचाई के बारे में हर प्रकार की जानकारी प्राप्त की जा सकती थी।

बर्ट्रेंड रसेल ने मुस्लिम स्पेन का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि अरब अर्थव्यवस्था की असाधारण विशेषताएँ उनकी कृषि थी। विशेष रूप से उनका बहुत ही विशिष्ट रूप में सिंचाई व्यवस्था का स्थापित करना, जिसे उन्होंने अपने

रेगिस्तानी जीवन से सीखा था, जहाँ पानी की बहुत कमी थी। स्पेनी कृषि आज तक अरब सिंचाई व्यवस्था से लाभ उठा रही है।

One of the best features of the Arab economy was agriculture, particularly the skillful use of irrigation, which they learnt from living where water is scarce. To this day Spanish agriculture profits by Arab irrigation works.

[Bertrand Russell, *A History of Western Philosophy*, p. 416]

यह एक सच्चाई है कि स्पेन में जो मुसलमान गए, वहाँ उन्होंने एक ऊँचे स्तर की हरित क्रांति (green revolution) स्थापित की। वहाँ उन्होंने खेतों और बाग़ों की सिंचाई की ऐसी व्यवस्था स्थापित की, जिसका उदाहरण उनसे पहले के इतिहास में देखने को नहीं मिलता। आश्चर्य की बात है कि बर्ट्रेंड रसेल ने उनकी इस उपलब्धि को रेगिस्तानी क्षेत्रों के उनके पिछले जीवन से जोड़ दिया। यह स्पष्टीकरण और व्याख्या अनुचित है। सच्चाई यह है कि उनकी इस उपलब्धि का वास्तविक कारण वह एकेश्वरवादी क्रांति था, जिसने अरबों की मानसिकता को पूरी तरह से बदल दिया।

इसके पहले लोग नदियों, जल-स्रोतों और समुद्रों को ईश्वर के रूप में देखते थे। वे उन्हें श्रद्धा और सम्मान की चीज़ समझते थे, न कि प्रयोग, खोज और जाँच की चीज़। अरबों ने अपनी बदली हुई मानसिकता के तहत उन चीज़ों को रचना के रूप में देखा। उन्होंने उन्हें इस दृष्टि से देखा कि वे किस प्रकार उन्हें अपने काम में लाने के लिए अपने अधीन करें। यही वह मानसिक क्रांति है, जिसने अरबों को इस योग्य बनाया कि वे सिंचाई और कृषि की दुनिया में ऐतिहासिक कारनामा अंजाम दे सके।

रेगिस्तानी जीवन, जहाँ पानी कम पाया जाता हो, वहाँ सिंचाई के नियम और सिद्धांत किस प्रकार सीखे जा सकते हैं। बर्ट्रेंड रसेल को अरबों की इस विशेषता का सही स्रोत मालूम न था, इसलिए बिल्कुल निराधार और असंबद्ध तौर पर उसने इसे उनकी रेगिस्तानी और बिना पानी की ज़िंदगी से जोड़ दिया। हालाँकि सही तौर पर यह उनकी उस मानसिक और आत्मिक क्रांति से जुड़ता है, जो विशुद्ध एकेश्वरवाद के माध्यम से उनके अंदर पैदा हुई थी। सिंचाई और

कृषि का यह कारनामा एकेश्वरवादी जीवन का परिणाम था, न कि वह रेगिस्तानी जीवन का परिणाम।

इतिहास-लेखन

वर्तमान समय में इतिहास के अध्ययन का तरीक़ा यह है कि क़ौम या समुदाय को इकाई का नाम देकर इतिहास का अध्ययन किया जाता है। अर्नोल्ड टॉयनबी के इतिहास की फ़िलॉसफ़ी ने इसमें और परिवर्तन किया कि सभ्यता को इतिहास के अध्ययन के लिए इकाई का नाम देने का प्रयास किया है।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. X, p. 76]

फिर भी इन दोनों विचारों की बुनियाद एक ही है। दोनों का मुद्दा यह है कि पूरे इतिहास में केवल शाही कार्यों और विशेषाधिकार प्राप्त लोगों पर ध्यान केंद्रित नहीं किया जाए, बल्कि संपूर्ण मानवीय समूह की सभी गतिविधियों को इतिहास के अध्ययन का विषय बनाया जाए। इतिहास-लेखन में यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है, जो केवल पिछले कुछ सौ वर्ष के अंदर अस्तित्व में आया है। वर्तमान समय के इतिहास या इतिहास-लेखन को अगर 'इंसाननामा' (Man-story) कहा जाए तो प्राचीनकालीन इतिहास या इतिहास-लेखन को केवल 'शाहनामा' (King-story) कहा जाएगा। प्राचीनकाल में राजाओं के इतिहास का नाम शाहनामा होता था।

यह केवल वर्तमान समय की बात है कि इतिहास को किसी कार्यकाल के ज्ञान-विज्ञान, उस समय की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति, उसकी सभ्यता और सांस्कृतिक स्थिति के अध्ययन से समझा जाता है। प्राचीन इतिहास-लेखन में साधारण इंसान चर्चा के योग्य नहीं था। चर्चा के योग्य केवल एक इंसान था और वह वही था, जिसके सिर पर राजशाही का ताज चमक रहा हो। इतिहास-लेखन को शाहनामा बनाने का यह स्वभाव इतना ज़्यादा बढ़ा हुआ था कि राजाओं के अतिरिक्त लोगों (Non-kings) से संबंधित सच्ची घटनाएँ भी सिरे से चर्चा के योग्य ही नहीं समझी जाती थीं, चाहे अपने आपमें वह कितनी ही ज़्यादा बड़ी क्यों न हों।

साधारण इंसानों की स्थिति यह थी कि उनकी वास्तविक घटनाएँ भी चर्चा के योग्य नहीं समझी जाती थीं, लेकिन राजा से संबंध रखने वाली काल्पनिक और मनगढ़ंत कहानियाँ भी इस प्रकार निष्ठा और लगन के साथ लिखी जाती थीं, जैसे वह बहुत बड़ी सच्चाई हों। उदाहरण के तौर पर— मिस्र के प्रसिद्ध तटीय शहर सिकंदरिया को सिकंदर महान ने 322 ईसा पूर्व में आबाद किया। इसी कारण इसका नाम सिकंदरिया है। सिकंदर के इस 'शाही कारनामा' के बारे में उस समय के इतिहासकारों ने जो विचित्र कहानियाँ लिखीं हैं, उनमें से एक यह है कि सिकंदर ने जब समुद्र के तट पर इस शहर को बनाना शुरू किया तो समुद्री शैतानों ने रुकावटें डालीं। इसके बाद सिकंदर ने लकड़ी और शीशे का एक संदूक़ तैयार कराया। इसे लेकर वह समुद्र की तह में गया। वहाँ उसने समुद्री शैतानों को देखकर उनकी तस्वीरें बनाईं और फिर वापस धरती पर आया, फिर उन तस्वीरों के अनुसार उनकी धातु की मूर्तियाँ तैयार करवाईं और उन मूर्तियों को सिकंदरिया की बुनियाद में गाड़ दिया। इसके बाद जब समुद्री शैतान वहाँ आए और देखा कि उनकी जाति के लोगों को मारकर बुनियाद में दफ़न कर दिया गया है तो वे डरकर भाग गए।

इस मामले का एक और विचित्र उदाहरण वह है, जो पैग़ंबरों से संबंधित है। मानव इतिहास की शायद सबसे अधिक विचित्र घटना यह है कि इतिहास में वही बात लिखने से रह गई, जो सबसे अधिक महत्व रखने वाली थी। यह उन महान व्यक्तित्वों के हालात (जीवन-शैली) हैं, जिन्हें पैग़ंबर कहा जाता है।

मानवता के लिखित इतिहास में राजाओं की ब्योरेवार और विस्तृत चर्चाएँ हैं। उनके महलों से लेकर उनके फ़ौजी सरदारों तक के हाल का वर्णन किया गया है, लेकिन ख़ुदा के पैग़ंबरों ने अपने युग में जो काम किए, उसका लिखित मानव इतिहास में कोई वर्णन नहीं मिलता।

अगर हिंदुस्तान की स्वतंत्रता का ऐसा इतिहास लिखा जाए, जिसमें महात्मा गाँधी का नाम न हो। अगर कम्युनिस्ट सोवियत संघ का ऐसा इतिहास लिखा जाए, जो लेनिन की चर्चा से वंचित हो तो ऐसा इतिहास लोगों को बहुत विचित्र लगेगा, लेकिन इसी प्रकार की सबसे विचित्र घटना यह है कि मानवता का लिखित इतिहास केवल अंतिम पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद को छोड़कर उन आत्मिक व्यक्तित्वों की चर्चा से पूरी तरह से वंचित है, जिन्हें पैग़ंबर कहा जाता है। चूक के इस नियम के एकमात्र अपवाद केवल अंतिम पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद

हैं और इसका कारण यह है कि उन्होंने स्वयं उस इतिहास को बदल दिया, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीनकाल में मानव इतिहास-लेखन में बार-बार ऐसी आश्चर्यजनक ग़लतियाँ सामने आ रही थीं। प्राचीनकाल में यह सबसे बड़ी ऐतिहासिक लापरवाही इसलिए हुई कि प्राचीनकाल के इतिहासकारों के निकट केवल 'राजा' और उससे संबंध रखने वाले मामले ही चर्चा एवं उल्लेख के योग्य थे, इसके अतिरिक्त दूसरी सभी चीज़ें उनके निकट सिरे से इस योग्य ही न थीं कि उनकी चर्चा की जाए।

इस्लाम से पहले पूरे प्राचीन युग में यही स्थिति पूरी दुनिया की थी। ज्ञात मानव इतिहास में अरब इतिहासकार इब्ने-ख़ल्दून (1332-1406 ई०) वह पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इतिहास लिखने की शैली को बदला और इतिहास-लेखन को 'शाहनामा' (King-story) की जगह से निकालकर 'इंसाननामा' (man-story) के युग में प्रविष्ट किया। उन्होंने इतिहास को 'राजाओं का ज्ञान' के बजाय 'मानव समाज का ज्ञान' यानी सोशियोलॉजी बना दिया। वास्तविकता यह है कि वह विज्ञान, जिसे आज के युग में सोशियोलॉजी कहा जाता है, वह इब्ने-ख़ल्दून की ही देन है। इब्ने-ख़ल्दून ने अपने बारे में लिखा है कि वह एक नए ज्ञान (समाजशास्त्र) का संस्थापक है और उनका यह दावा निश्चित रूप से सही है।

यह दरअसल इब्ने-ख़ल्दून हैं, जिन्होंने यूरोप को इतिहास-लेखन की नई शैली और विज्ञान प्रदान किया और स्वयं इब्ने-ख़ल्दून को, जिससे यह चीज़ मिली, वह इस्लाम था। इस्लामी क्रांति ने इब्ने- ख़ल्दून को पैदा किया और इब्ने-ख़ल्दून ने इतिहास-लेखन की नई शैली और विज्ञान को।

इब्ने-ख़ल्दून ने इतिहास-लेखन के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन किया, उनके इस कार्य को 20वीं सदी के प्रसिद्ध अंग्रेज़ इतिहासकार अर्नोल्ड टॉयनबी ने इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"इब्ने-ख़ल्दून ने इतिहास की एक फ़िलॉसफ़ी पैदा की। यह निःसंदेह अपनी तरह का किया गया सबसे बड़ा काम है, जो कभी भी किसी ज़हन ने किसी युग में अथवा किसी स्थान पर किया हो।"

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 9, p. 148]

इस तरह एक स्कॉटिश धर्मशास्त्री और दार्शनिक तथा प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ दि फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ हिस्ट्री' के लेखक रॉबर्ट फ्लिंट ने इन असाधारण शब्दों में उनकी महानता को स्वीकार किया है—

"इतिहास के विचारक की हैसियत से किसी भी दौर या किसी भी मुल्क में उनके जैसा दूसरा नहीं हुआ, यहाँ तक कि उनके तीन सौ वर्ष बाद वायको पैदा हुआ। प्लेटो, अरस्तू, ऑगस्टिन उसके बराबर के नहीं थे।"

"As a theorist on history he had no equal in any age or country until Vico appeared, more than three hundred years later; Plato, Aristotle and Augustine were not his peers."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 9, p. 148]

प्रोफेसर हिट्टी ने लिखा है—

इब्ने-ख़ल्दून की लोकप्रियता और ख्याति उनके 'मुक़द्दमा' (Introduction to his book on history) पुस्तक के कारण है। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने पहली बार ऐतिहासिक स्थिति का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसमें जलवायु और भूगोल की प्राकृतिक सच्चाई को इतिहास में जगह दी गई और इसी के साथ आत्मिक, मानसिक तथा वैचारिक शक्तियों को भी, जो इतिहास पर प्रभावी होती हैं। जातियों के उत्थान और पतन के नियम-सिद्धांत को तैयार करने और उसे विकसित करने वाले की हैसियत से इब्ने-ख़ल्दून को इसका खोजकर्ता कहा जा सकता है, जैसा कि उन्होंने 'मुक़द्दमा' में स्वयं भी अपने आपको यही हैसियत दी है। उन्होंने इतिहास के वास्तविक कार्यक्षेत्र, उसके वास्तविक स्वरूप और उसकी विशेषताओं को खोजा या कम-से-कम समाजशास्त्र के विज्ञान (Science of Sociology) के वे वास्तविक संस्थापक हैं। कोई अरब लेखक और यहाँ तक कि कोई यूरोपियन लेखक नहीं, जिसने कभी भी इतिहास को इस प्रकार विस्तृत, समग्र और दार्शनिक अंदाज़ से देखा हो। आलोचकों और समीक्षकों की राय के अनुसार, इब्ने-ख़ल्दून सबसे बड़े ऐतिहासिक दार्शनिक थे, जिनको इस्लाम ने पैदा किया, बल्कि वह सारे युगों में पैदा होने वाले लोगों में सबसे बड़े इतिहासकार-दार्शनिक की हैसियत रखते हैं।

[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London,1970), p. 568]

इब्ने-ख़ल्दून ने अपने 'मुक़द्दमा' के पहले भाग में सामान्य समाजशास्त्र (General Sociology) का वर्णन किया है, दूसरे और तीसरे भाग में राजनीतिक समाजशास्त्र (Sociology of Politics) का वर्णन है, चौथे भाग में शहरी जीवन का समाजशास्त्र, पाँचवें भाग में आर्थिक समाजशास्त्र का वर्णन किया गया है और छठे भाग में समाजशास्त्र (Sociology) की जानकारी और उसके ज्ञान की चर्चा है। इसका हर अध्याय शिक्षा और ज्ञान की दृष्टि से उच्चतम स्तर का है। इब्ने-ख़ल्दून का यह काम इतिहास-लेखन, अर्थशास्त्र, राजनीति एवं शिक्षा पर शानदार अवलोकनों और जाँच के कामों से भरा हुआ है। इस प्रकार वह एक ऐसे इतिहास के विज्ञान की नींव रखते हैं, जो केवल राजाओं के हालात पर आधारित न हो, बल्कि विस्तृत और व्यापक अर्थों में संपूर्ण मानव जाति के अर्थशास्त्र, राजनीति, शिक्षा, धर्म, नैतिकता और संस्कृति पर आधारित हो।
[Philip K. Hitti, *History of the Arabs* (London,1970), p. 568]

इतिहासकारों ने आम तौर पर स्वीकार किया है कि अब्दुल रहीम इब्ने-ख़ल्दून के आने तक इतिहास का विज्ञान अविकसित स्थिति में पड़ा हुआ था। इब्ने-ख़ल्दून वह पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इतिहास की दार्शनिकता की शुरुआत की। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका का यहाँ तक कहना है—

"उसने दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण इतिहास की दार्शनिकता को शुरू किया।"
[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol.9, p.147]

पर सवाल यह है कि स्वयं इब्ने-ख़ल्दून के लिए यह कैसे संभव हुआ कि वह एक ऐसी चीज़ को पाए, जिसे इससे पहले का कोई व्यक्ति न पा सका था। इसका उत्तर यह है कि दूसरे इतिहासकार इस्लामी क्रांति से पहले पैदा हुए और इब्ने-ख़ल्दून इस्लामी क्रांति के बाद पैदा हुए। इब्ने-ख़ल्दून दरअसल इस्लामी क्रांति की पैदावार थे और यही वह चीज़ है, जिसने इब्ने-ख़ल्दून को इब्ने-ख़ल्दून बनाया।

इतिहास की दार्शनिकता की उन्नति में दोबारा वही चीज़ रुकावट बनी हुई थी, जिसे धार्मिक भाषा में अनेकेश्वरवाद कहा जाता है। इस्लाम से पहले का पूरा युग ईश्वरीय राजशाहियों का युग है। कुछ राजा सीधे-सीधे ईश्वर होने का दावा करते थे और लोगों से अपनी उपासना कराते थे, कुछ राजा अपने आपको ईश्वर का मानव रूप या अवतार या उसका प्रतिनिधि बताकर लोगों में यह आस्था बनाए

हुए थे कि उन्हें अपनी प्रजा पर बिना शर्त संपूर्ण शासन का अधिकार प्राप्त है, ताकि उनकी पूर्ण संप्रभुता (sovereignty) पर कभी भी कोई सवाल न करे। कुछ राजा पूरी तरह से तो ईश्वर होने का दावा नहीं करते थे, लेकिन व्यावहारिक रूप से उनके क्षेत्र में भी वही वातावरण था, जो दूसरे देशों में पाया जाता था।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. V, p. 816]

इस्लाम ने इन हालात को बदला। इस्लाम एकेश्वरवाद की बुनियाद पर वह क्रांति लाया, जिसके बाद राजा और साधारण व्यक्ति में कोई अंतर न रहा। सभी इंसान समान रूप से एक आदम और हव्वा (Adam and Eve) की औलाद कहलाए। यह एक बेमिसाल इंसानी बराबरी की एक महान क्रांति थी। इंसानी बराबरी की इस महान क्रांति के बाद ही यह संभव हुआ कि कोई इब्ने-ख़ल्दून पैदा हो, जो राजाओं को केंद्र बनाकर सोचने के बजाय साधारण इंसानों को केंद्र बनाकर सोचे और फिर इतिहास के नए विज्ञान की बुनियाद रखे।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के पुत्र इब्राहीम मदीना में पैदा हुए। डेढ़ वर्ष की आयु में 632 ई० में उनका निधन हो गया। संयोग से इसी दिन सूरज ग्रहण हुआ। प्राचीनकाल में जिन अंधविश्वासों का रिवाज था, उनमें से एक यह था कि जब राजा या किसी बड़े व्यक्ति की मृत्यु होती तो सूरज ग्रहण या चाँद ग्रहण होता है, इस तरह मानो आसमान बड़े व्यक्तियों की मृत्यु पर शोक मनाता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की हैसियत उस समय अरब के राजा जैसी थी। इसलिए मदीना के कुछ मुसलमानों ने पुराने विचार के तहत कहा कि यह सूरज ग्रहण इब्राहीम की मृत्यु के कारण हुआ है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद को पता चला तो आपने फ़ौरन इस बात का खंडन किया। इस संबंध में हदीस की पुस्तकों में कई स्थानों पर वर्णन किया गया है। एक वर्णन इस प्रकार है—

हज़रत मुहम्मद एक दिन घर से निकलकर तेज़ी से मस्जिद की ओर आए। उस समय सूरज ग्रहण था। आपने नमाज़ पढ़ी, यहाँ तक कि ग्रहण समाप्त हो गया, फ़िर आपने बताया कि अज्ञानता के समय के लोग कहा करते थे कि सूरज और चाँद में ग्रहण उस समय लगता है, जबकि धरती के बड़ों में से किसी की मृत्यु हो जाए, लेकिन सच्चाई यह है कि सूरज और चाँद में किसी इंसान की मृत्यु अथवा जीवन के कारण ग्रहण नहीं लगता। यह दोनों ईश्वर की बनाई हुई चीज़ों में से दो निर्मित चीज़ें हैं। ईश्वर अपने द्वारा निर्मित चीज़ों में जो चाहता है,

करता है। हाँ, जब दोनों में से किसी में ग्रहण लगे तो तुम लोग नमाज़ पढ़ो, यहाँ तक कि वह समाप्त हो जाए या ईश्वर कोई बात स्पष्ट कर दे।

(Refence: *Mishkat al-Masabih*, Chapter entitled Salat al-Khushu)

प्राचीन युग के शासक, प्रजा की इन अंधविश्वासी आस्थाओं का संरक्षण और उनका समर्थन करते थे, ताकि लोगों के ऊपर उनकी महानता छाई रहे। ज्ञात इतिहास में पैग़ंबर-ए-इस्लाम पहले शासक हैं, जिन्होंने इन अंधविश्वासी आस्थाओं का खंडन किया और उसे बेबुनियाद घोषित किया। इस तरह आपने इंसान को एक नई मानसिकता और सोच दी। आपने एक इंसान और दूसरे इंसान के अंतर को वैचारिक एवं व्यावहारिक तौर पर समाप्त कर दिया। आपने उन मान्यताओं और अंधविश्वासों को बेबुनियाद सिद्ध कर दिया, जिनके माध्यम से इस प्रकार के सोच-विचार लोगों के ज़हन में गहराई से समाए हुए थे।

जब पूरे अरब पर इस्लाम का वर्चस्व हो गया तो पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने अपने अंतिम समय में लगभग सवा लाख साथियों के साथ हज अदा किया। इस हज में आपने अराफ़ात के मैदान में वह ऐतिहासिक ख़ुत्बा यानी धर्मोपदेश दिया, जिसे 'ख़ुत्बा हज्जतुल विदा' (अंतिम उपदेश) कहा जाता है। यह धर्मोपदेश अरब के शासक की हैसियत से मानवाधिकारों और साथ में मानवता के संविधान की आम घोषणा था। आपने कहा—

"ऐ लोगो! सुनो, सभी लोग एक पुरुष और एक महिला से पैदा किए गए हैं। इनमें जो अलग-अलग प्रकार का ज़ाहिरी या दिखाई देने वाला अंतर है, वह केवल पहचान और परिचय के लिए है। तुममें से ईश्वर के निकट सबसे अधिक सम्माननीय वह व्यक्ति है, जो सबसे अधिक ईश्वर से डरने वाला है। किसी अरबी को किसी ग़ैर-अरब के ऊपर श्रेष्ठता नहीं और किसी ग़ैर-अरब को किसी अरबी के ऊपर श्रेष्ठता नहीं, किसी काले को किसी गोरे पर श्रेष्ठता नहीं और किसी गोरे को किसी काले पर श्रेष्ठता नहीं। श्रेष्ठता की चीज़ केवल तक़्वा[1] है।"

फिर आपने कहा कि सुनो—

"इस्लाम से पहले अज्ञानता के युग की हर बात और हर मामला मेरे क़दमों के नीचे रौंद दिया गया।"

---

1 ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा तथा भय रखते हुए दुष्कर्मों एवं बुराइयों से परहेज़ करना।

प्राचीन इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि समय के एक शासक ने लोगों के बीच हर प्रकार की ऊँच-नीच और हर प्रकार के झूठे भेदभाव को व्यावहारिक रूप से और लगभग पूरी तरह से समाप्त कर दिया। इसके बाद इंसानी दुनिया में एक नई सभ्यता पैदा हुई, जिसमें सभी इंसान बराबर की हैसियत रखते थे। हज़रत मुहम्मद के बाद जो लोग इस्लामी दुनिया के शासक बने, वह हालाँकि पुरानी आबाद दुनिया के बहुत बड़े हिस्से के शासक थे, लेकिन लोगों के बीच वे फ़क़ीरों की तरह रहते थे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के उत्तराधिकारी अबू बक्र और उमर के बारे में बोलते हुए महात्मा गाँधी ने इस प्रकार कहा है—

"वे हालाँकि एक विस्तृत और बड़ी सल्तनत के मालिक थे, लेकिन लोगों के बीच वे फ़क़ीरों की तरह रहते थे।"

"Though they were masters of a vast empire, they lived the life of paupers."

यह क्रांति इतनी शक्तिशाली थी कि बाद के समय में जबकि हुकूमत के संस्थानों में और उसके ढाँचे में बिगाड़ आ गया और 'ख़लीफ़ा' के बजाय 'सुल्तान या सम्राट' होने लगे, तब भी इस्लामी सभ्यता के दबाव के तहत यह स्थिति थी कि कोई सुल्तान प्राचीन शैली का राजा बनकर नहीं रह सकता था। इस सिलसिले में इस्लामी इतिहास में अनगिनत घटनाएँ मौजूद हैं। यहाँ हम केवल एक घटना की चर्चा करते हैं—

सुल्तान अब्दुर रहमान द्वितीय (जन्म : 792 ई० में टोलेडो में, मृत्यु : 852 ई० में क़र्तबा में) मुस्लिम स्पेन का एक शक्तिशाली शासक था। एक साल उसने रमज़ान के महीने में एक रोज़ा बिना ऐसे कारण के छोड़ दिया, जो शरीयत की दृष्टि से मान्य हो। फ़िर भी राजा होने के बावजूद उसकी यह हिम्मत नहीं हुई कि वह अपने आपको क़ानून से श्रेष्ठ समझ ले। इसलिए उसने क़र्तबा (Cordova) के धार्मिक विद्वानों को दरबार में जमा किया और उनके सामने अपने साथ घटी घटना का वर्णन करके साधारण व्यक्ति की तरह उनसे फ़तवा यानी धार्मिक राय पूछी।

इतिहासकार अल-मक़्क़री ने लिखा है कि धार्मिक विद्वानों की उस सभा में इमाम याह्या भी उपस्थित थे। इमाम याह्या ने मामले को सुनकर फ़तवा दिया कि राजा अपनी इस ग़लती पर प्रायश्चित्त के रूप में लगातार साठ दिनों तक रोज़े

रखे। जब वे फ़तवा देकर महल से बाहर निकले तो इस्लामी क़ानून के एक विद्वान ने कहा कि हज़रत, शरीयत में साठ ग़रीब लोगों को खाना खिलाने का आदेश भी तो मौजूद है, फ़िर आपने राजा को इतना कड़ा फ़तवा क्यों दिया? आप यह फ़तवा भी तो दे सकते थे कि राजा एक रोज़े के बदले साठ ग़रीब लोगों को खाना खिला दें?

इमाम याह्या ने ग़ुस्से से उस विद्वान की ओर देखा और कहा कि राजाओं के लिए साठ आदमी को खाना खिलाना कोई सज़ा नहीं। इसलिए स्पेन का इतिहास बताता है कि सुल्तान अब्दुर रहमान द्वितीय ने इमाम याह्या के फ़तवे को मानते हुए लगातार साठ रोज़े रखे और किसी प्रकार की कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई, यहाँ तक कि इमाम याह्या को उनके धार्मिक पद से निरस्त भी नहीं किया।

(*Muslim Rulers,* p. 415, with reference to *Nafh al-Tayyib,* Part I, pp. 362-368.)

यह उस क्रांति का प्रभाव था, जो इस्लाम ने पैदा की। इस क्रांति ने राजा और आम लोगों के अंतर को समाप्त कर दिया था। इस क्रांति ने इंसानी बराबरी का ऐसा वातावरण बना दिया कि कोई व्यक्ति अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ नहीं समझ सकता था। किसी राजा को हिम्मत नहीं होती थी कि वह अपने आपको साधारण लोगों से अलग या श्रेष्ठ बता सके और अपने लिए क़ानून की पाबंदी की ज़रूरत न समझे।

हालाँकि इस्लामी क्रांति से पहले यह एक स्वीकार की गई सच्चाई थी कि राजा साधारण लोगों से श्रेष्ठ और ऊँची हैसियत रखता है। उदाहरण के तौर पर— पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के समय का पूर्वी रोमन सम्राट हरक़ल हालाँकि अपने आपको ईसाई कहता था, लेकिन उसने अपनी बहन की बेटी से शादी कर ली, जो ईसाई शरीयत के विरुद्ध था।

"He had married his niece, Martina, thus offending the religious scruples of many of his subjects, who viewed his second marriage as incestuous."

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 8, p. 782]

लोगों को मालूम था कि यह एक ग़ैर-कानूनी और अवैध संबंधों का विवाह है, लेकिन इसके बावजूद सभी लोग शांत रहे। इसका कारण यह था कि हरक़ल राजा था और राजा को अधिकार था कि वह जो चाहे करे। साधारण लोगों के नियम और क़ानून से वह ऊपर है, साधारण इंसानी मापदंड से उसे नापा नहीं जा सकता।

प्राचीन युग में कई प्रकार की अंधविश्वासी आस्थाओं के तहत राजा की महानता की ग़ैर-मामूली धारणा लोगों के ज़हन पर छा गई। वे राजा को अपने से ऊँची और श्रेष्ठ चीज़ समझने लगे, स्वयं राजा भी विशिष्ट संस्कारों के माध्यम से लोगों की इस सोच को दृढ करते रहे। इन परिस्थितियों में राजा को अपने साम्राज्य में वही महानता का स्थान प्राप्त हो गया, जो विशाल ब्रह्मांड में ईश्वर के लिए समझा जाता है। स्वाभाविक रूप से इतिहास-लेखन की शैली भी इससे प्रभावित हुई और आम आदमी की नगण्य चर्चाओं के साथ इतिहास लगभग पूरी तरह से राजाओं की चर्चाओं के नाम होकर रह गया।

अरब में और पड़ोसी देशों में जब इस्लामी क्रांति आई तो इसने जिस प्रकार प्राकृतिक चीज़ों, जैसे— सूरज, चाँद आदि को ईश्वरीय पद या दिव्य पद से हटाया, उसी प्रकार राजाओं को भी ग़ैर-मामूली और असाधारण महानता के पद से हटा दिया गया। अब राजा भी उसी प्रकार एक साधारण व्यक्ति था, जिस तरह आम लोग थे।

इस्लामी क्रांति का प्रभाव एशिया, अफ़्रीक़ा और कई यूरोपीय देशों की अधिकतर आबाद दुनिया पर पड़ा। विश्वस्तर पर एक नया माहौल पैदा हुआ। लोगों के अंदर एक नई सोच उभरी। राजा-केंद्रित (king-centred) प्राचीन मानसिकता समाप्त हो गई और उसकी जगह इंसान-केंद्रित (man-centred) सोच पैदा हुई। इतिहास-लेखन के मामले में इस मानसिकता का पहला प्रभावशाली सबूत अब्दुर रहमान इब्ने-ख़ल्दून थे। उन्होंने इतिहास पर नए अंदाज़ की एक पुस्तक लिखनी आरंभ की, जिसका संक्षिप्त नाम 'किताब अल-इबर' (Book of Lessons) है। उन्होंने इस पुस्तक में इतिहास-लेखन की शैली का अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस पुस्तक पर उन्होंने इतिहास-लेखन के बारे में एक सविस्तार प्रस्तावना लिखी। यह प्रस्तावना वास्तविक पुस्तक से अधिक

मूल्यवान समझी जाती है, इसलिए अलग से वह 'मुक़द्दमा इब्ने-ख़ल्दून' के नाम से बार-बार कई भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

ज्ञात इतिहासकारों में सबसे अधिक प्रसिद्ध इतिहासकार अल-मक़रिज़ी रहे हैं, जो इब्ने-ख़ल्दून के शिष्य थे। उन्होंने 15वीं सदी में इब्ने-ख़ल्दून के सिद्धांतों को मिस्र में प्रस्तुत किया और इस प्रकार इब्ने-ख़ल्दून के सिद्धांतों ने 15वीं सदी में मिस्र के विद्वानों पर प्रभाव डाला। उनके बाद दूसरे मुस्लिम देशों में भी इब्ने-ख़ल्दून के सिद्धांत और विचारों ने अपना प्रभाव डाला। 1860 और 1870 ई० के बीच उनके 'मुक़द्दमे' का पूरा अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित किया गया। इस प्रकार इब्ने-ख़ल्दून के इतिहास-लेखन के सिद्धांत और विचार यूरोप में फैले। यहाँ उनके विचारों को बहुत लोकप्रियता मिली। इस प्रकार उनके विचारों ने यूरोप की मिट्टी में अपनी जड़ें जमा लीं। वायको (Giambattista Vico) और दूसरे पश्चिमी इतिहासकारों ने इस काम को आगे बढ़ाया। यहाँ तक कि वह चीज़ अस्तित्व में आई, जिसे इतिहास-लेखन का आधुनिक विज्ञान कहा जाता है।

अध्याय 4

स्वतंत्रता, इंसानी बराबरी और भाईचारा

सारे दार्शनिकों, विचारकों और चिंतकों का पसंदीदा सपना इंसानी बराबरी और भाईचारा है, लेकिन हज़रत मुहम्मद इतिहास के पहले व्यक्ति हैं, जिनके द्वारा लाई हुई इस्लामी क्रांति ने इतिहास में पहली बार इंसानी बराबरी और भाईचारे को व्यावहारिक रूप में स्थापित किया। इस सच्चाई को आम तौर पर गंभीर और विचारशील विद्वानों ने स्वीकार किया है। उदाहरण के तौर पर— स्वामी विवेकानंद ने अपने प्रकाशित पत्र (पत्र नंबर 175) में कहा था कि मेरा अनुभव है कि अगर कभी कोई धर्म व्यावहारिक रूप से इंसानी बराबरी के सराहनीय स्तर तक पहुँचा है तो वह इस्लाम और केवल इस्लाम है।

"if ever any religion approached to this equality in an appreciable manner, it is Islam and Islam alone."

(*Letters of Swami Vivekanand*, letter No. 175)

संपूर्ण मानव इतिहास में व्यावहारिक रूप में स्थापित की गई यह इंसानी बराबरी तथा भाईचारा एक अपवाद (exception) था और इस ऐतिहासिक अपवाद का कारण भी वही अनेकेश्वरवाद था, जो दूसरी हर प्रकार की उन्नति में रुकावट बना हुआ था। अनेकेश्वरवाद के वर्चस्व ने लोगों के अंदर असमानता (inequality) स्थापित कर रखी थी, लेकिन एकेश्वरवाद के प्रभाव ने लोगों के अंदर इंसानी बराबरी की व्यवस्था स्थापित कर दी।

वास्तव में बात यह है कि लोगों के बीच भौगोलिक और प्राकृतिक कारणों से रंग-रूप, शारीरिक गठन, विशिष्ट स्वाभाविक योग्यता आदि में बहुत अंतर पाया जाता है। यह सब उन्हें विरासत में मिलता है या उसे वे प्राप्त करते हैं, जैसे कोई काला है और कोई गोरा, कोई अमीर है और कोई ग़रीब, कोई शासक है और कोई शासित। यह अंतर क़ुरआन के शब्दों में पहचान के लिए है (49:13), न कि भेदभाव के लिए। यह अंतर श्रेणी-निर्धारण के लिए नहीं है, बल्कि

इसलिए है कि दुनिया की व्यवस्था बेहतर ढंग से स्थापित हो सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि इनमें से कोई उच्च स्तर का है और कोई निम्न स्तर का। यह केवल इसलिए है कि दुनिया की अनेकानेक गतिविधियों और कामों को बेहतर ढंग से चलाया जा सके।

प्राचीनकाल में अनेकेश्वरवाद के प्रभाव के तहत जो अंधविश्वासी सोच और आस्थाएँ पैदा हुईं और उसने जिस प्रकार प्राकृतिक एवं भौतिक घटनाओं के बारे में झूठी और काल्पनिक अवधारणाएँ स्थापित की, उसी प्रकार लोगों के बारे में भी सारी दुनिया में झूठे और काल्पनिक विचार स्थापित हुए और सदियों तक स्थापित रहने के बाद परिपक्व होकर वे लोगों की परंपराओं और उनके रीति-रिवाजों में सम्मिलित हो गए। उदाहरण के तौर पर— इसी के प्रभाव से कुछ समाजों में जाति व्यवस्था का विश्वास और आस्था बनी। यह मान लिया गया कि कुछ लोग ईश्वर के सिर से पैदा हुए हैं और कुछ लोग ईश्वर के पाँव से। इस प्रकार ऊँची ज़ात और नीची ज़ात की अवधारणा का प्रचलन हुआ। इसी प्रकार राजाओं के बारे में यह विश्वास बना कि वे देवताओं के वंश से हैं और प्रजा इसलिए है कि उनकी सेवा करे। कई समाजों में यह विचारधारा बनी कि कुछ लोग जन्मजात उच्च और श्रेष्ठ वंश के हैं और दूसरे लोग जन्मजात कमतर या निम्न वंश के।

लोगों के अंदर असमानता की अवधारणा पर आधारित भेदभावपूर्ण व्यवहार दोबारा अनेकेश्वरवाद के प्रभाव और संरक्षण में अधिक प्रचलित हो गया था और सदियों के उपयोग से इतिहास में इसका एक मज़बूत सिलसिला स्थापित हो गया। यहाँ तक कि यह सोच बन गई कि जिस प्रकार रात का अँधेरा होना और दिन का उजाला होना पूर्वनिर्धारित है या नियति में से है, उसी प्रकार इंसानियत का बँटवारा भी नियति में से है। वह हमेशा से मौजूद है, इसे समाप्त नहीं किया जा सकता।

इंसानी बराबरी के युग को लाने के लिए अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास के दबदबे को समाप्त करना था, लेकिन हज़ारों पैग़ंबरों के आने के बावजूद वह समाप्त न हो सका। बीते युग में जितने भी पैग़ंबर आए, सभी ने सैद्धांतिक रूप में ऐसी मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया था, लेकिन व्यावहारिक रूप से लोगों के निजी लाभों ने उन्हें जीवित रखा। इस कारण इस अंधविश्वास को व्यावहारिक रूप से समाप्त नहीं किया जा सका। पैग़ंबरों में अंतिम पैग़ंबर होने के कारण

हज़रत मुहम्मद के लिए यह आवश्यक था कि इसे भी व्यावहारिक रूप से और लगभग पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाए। इसलिए ईश्वर ने आपकी विशेष रूप से सहायता की और आपने अपने साथियों को साथ लेकर विश्वस्तर पर उस बौद्धिक और वैचारिक क्रांति की शुरुआत की, जिसके बाद इस विचारधारा और इस सोच की जड़ें उखड़ गईं। इंसानी असमानता की विचारधारा हमेशा के लिए समाप्त हो गई।

अरब में अनेकेश्वरवादी व्यवस्था-प्रणाली को समाप्त करने के बाद अनेकेश्वरवादी मान्यताओं को समाप्त करने के लिए हज़रत मुहम्मद ने अपने अंतिम हज के अवसर पर जो धर्मोपदेश दिए, उसके कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

किसी अरब को किसी ग़ैर-अरब (Non-Arab) पर श्रेष्ठता नहीं और किसी ग़ैर-अरब को किसी अरबी पर श्रेष्ठता नहीं। किसी काले को किसी गोरे पर श्रेष्ठता नहीं और किसी गोरे को किसी काले पर श्रेष्ठता नहीं। सुनो, तुम सब आदम की संतान हो और आदम मिट्टी से थे। (अल-बुख़ारी)

हज़रत मुहम्मद की यह घोषणा केवल एक उपदेश नहीं था। यह उस समय की सरकार की ओर से जारी एक सरकारी आदेश के जैसा था। यह केवल 'क्या होना चाहिए' का मौखिक सुझाव नहीं था, बल्कि 'क्या हो चुका है' इस वर्तमान स्थिति के बारे में वास्तविक जानकारी थी। इसलिए एक ओर यह आदेश हुआ और दूसरी ओर इस पर पूरी तरह से ध्यान देना शुरू हो गया। इंसानियत के बीच भेदभाव की बनाई हुई सभी कृत्रिम दीवारें ढह गईं और इंसानियत एक नई दुनिया में पहुँच गई, जहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं थी और जहाँ चरित्र-विशेषता एवं योग्यता की बुनियाद पर व्यक्ति को समाज में मान्यता मिलती थी, न केवल वंशीय संबंध, बल्कि जन्मसिद्ध संयोग की बुनियाद पर।

एक घटना

प्राचीनकाल में जब एक व्यक्ति को सामाजिक भेदभाव का अहसास होता था तो वह इसे अपने भाग्य का परिणाम समझकर चुप रह जाता था, लेकिन इस्लाम के दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक़ के युग में पहली बार एक घटना

हुई, जो बताती है कि समय कैसे बदल गया था। मुसलमानों ने उस समय मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली थी और अम्र इब्न अल-आस को मिस्र का गवर्नर नियुक्त किया गया था।

मिस्र के मुसलमान गवर्नर अम्र इब्न अल-आस का बेटा एक क़िब्ती[1] को कोड़ा मारता है और मारते हुए कहता है, "यह लो, मैं एक प्रतिष्ठित और महान व्यक्ति का बेटा हूँ!"

उस क़िब्ती नवयुवक को इस्लामी क्रांति द्वारा लाई गई इंसानी बराबरी की जानकारी थी, इसलिए वह मिस्र से रवाना होकर मदीना आया और ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ से शिकायत की कि उनके गवर्नर के लड़के ने घृणा की बुनियाद पर मुझे कोड़े से मारा है, यह कहते हुए कि "मैं एक प्रतिष्ठित और महान व्यक्ति का बेटा हूँ!"

ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ तुरंत अपने एक विशिष्ट व्यक्ति को मिस्र भेजते हैं कि वहाँ जाओ और अम्र इब्न अल-आस और उनके लड़के को जिस स्थिति में भी हों, उसी स्थिति में उनको सवारी पर बैठाकर मदीना ले आओ।

दोनों को मदीना लाया जाता है। ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ क़िब्ती को बुलाते हैं और कहते हैं कि क्या यही वह व्यक्ति है, जिसने तुमको कोड़े से मारा था। क़िब्ती ने कहा, "हाँ।" आपने क़िब्ती को कोड़ा दिया और कहा कि इस प्रतिष्ठित और महान व्यक्ति के बेटे को मारो। क़िब्ती ने मारना शुरू किया और उस समय तक मारता रहा, जब तक उसे पूरी संतुष्टि न हो गई। उसके बाद ख़लीफ़ा क़िब्ती से कहते हैं कि इनके पिता अम्र इब्न अल-आस को भी मारो, क्योंकि इन्हीं की बड़ाई के बल पर बेटे ने तुम्हें मारा था, लेकिन क़िब्ती कहता है कि नहीं, जिसने मुझे मारा था, उसे मैंने मार लिया। इससे ज़्यादा की मुझे इच्छा नहीं।

जब यह सब हो चुका तो ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ ने मिस्र के गवर्नर अम्र इब्न अल-आस को संबोधित करते हुए कहा, "ऐ अम्र, तुमने कब से लोगों को ग़ुलाम बना लिया, हालाँकि उनकी माँओं ने उन्हें आज़ाद पैदा किया था?"

---

[1] मिस्र की पुरानी जाति।

हज़रत मुहम्मद और आपके साथियों के द्वारा लाई हुई इस क्रांति ने सारी दुनिया में ऊँच-नीच की दीवारें गिरा दीं। इंसानी बराबरी का एक नया युग शुरू हो गया, जो अंततः विकसित होकर आधुनिक लोकतंत्र तक पहुँच गया।

प्राचीन युग की सरकारें अनेकेश्वरवादी आस्था पर क़ायम थीं। लोग सूरज व चाँद को पूजते थे और राजा के वंश के लोग जनता को विश्वास दिलाते थे कि वे इन देवताओं की संतान हैं। इसी से सूर्यवंशी और चंद्रवंशी ख़ानदानों के अस्तित्व की धारणाएँ पैदा हुईं। प्राचीन युग के शासक चाहते थे कि लोग इस प्रकार की अंधविश्वासी आस्थाओं का पालन करते रहें। वे चाहते थे कि लोग यह आस्था रखें कि राजाओं की मृत्यु से सूरज ग्रहण और चाँद ग्रहण होता है, ताकि उनकी महत्ता और प्रतिष्ठा लोगों के ज़हन पर बनी रहे और वे सफलतापूर्वक उन पर शासन करते रहे। इस प्रकार प्राचीन युग की सरकारें अनेकेश्वरवाद और अंधविश्वास की समर्थक, संरक्षक और सहायक बनी हुई थीं।

हज़रत मुहम्मद ने जब शासक होते हुए यह घोषणा की कि सूरज और चाँद ग्रहण पूरी तरह से प्राकृतिक घटनाएँ हैं, न कि किसी व्यक्ति की महानता का सबूत तो इसके बाद अंधविश्वास और प्राकृति के प्रति सदियों पुरानी श्रद्धा-सम्मान की जड़ें कट गईं और मानव इतिहास में एक नए युग की शुरुआत हुई, जिसमें आसपास की चीज़ों के बारे में देवत्व का विश्वास और पवित्रता की आस्था समाप्त हो गई और उनके बारे में सच्चाई को जाँचने और तौलने वाली वह सोच पैदा होनी शुरू हुई, जिसे आधुनिक समय में वैज्ञानिक सोच कहा जाता है।

हज़रत मुहम्मद के द्वारा लोगों को केवल यही चीज़ नहीं मिली। इसके साथ और अधिक यह हुआ कि आपने जो ईश्वरीय पुस्तक लोगों को प्रदान की, उसमें बल देकर यह बात बताई गई है कि धरती व आसमान की सभी चीज़ें इंसान के काम के लिए इंसान के अधीन कर दी गई हैं (क़ुरआन, 31:20)। इससे यह सोच पैदा हुई कि इन चीज़ों की खोज और जाँच-प्रयोग करके इन्हें अपने काम में लाने की ज़रूरत है, न कि इनको महान और श्रेष्ठ समझकर इनके आगे सिर झुकाया जाए।

नए विश्व का निर्माण

हज़रत मुहम्मद जो दीन लाए थे, उसे अरब के सभी लोगों ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह आश्चर्यजनक तेज़ी के साथ फैलना शुरू हुआ। यहाँ तक कि एक सदी से कम अवधि में वह एशिया और अफ़्रीक़ा के लोगों को प्रभावित करता हुआ यूरोप में प्रविष्ट हो गया। अमेरिका को छोड़कर लगभग सभी देशों और सभी समुद्रों पर अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष तौर पर इस दीन के अनुयायियों का वर्चस्व और प्रभाव स्थापित हो गया।

यह सिलसिला एक हज़ार वर्ष तक जारी रहा। नाइजीरिया की सोकोतो ख़िलाफ़त (Sokoto Caliphate) से लेकर इंडोनेशिया के मुस्लिम सुलतान तक और तुर्की की उस्मानी ख़िलाफ़त से लेकर हिंदुस्तान की मुग़ल बादशाहत तक, जैसे कि यह एक विशाल देश था जो उस समय की राष्ट्रीय और भौगोलिक सीमाओं से अनजान था। मुसलमान इस पूरे क्षेत्र में व्यापार, शिक्षा और अन्य उद्देश्यों के लिए बिना किसी परेशानी के यात्रा कर सकते थे।

यही वह युग है, जबकि 14वीं सदी में इब्न बतूता ने लगभग 75 हज़ार मील की यात्रा की। वह एक देश से दूसरे देश में इस तरह पहुँचे कि कहीं भी वे अजनबी न थे। कहीं भी उन्होंने बेरोज़गारी की समस्या का सामना नहीं किया। वे मुहम्मद बिन तुग़लक़ (1325-51 ई०) के युग में दिल्ली आया। यहाँ उन्हें न केवल उपहार मिले, बल्कि उन्हें दिल्ली का न्यायाधीश बना दिया गया।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. 9, p. 144]

इस विश्वस्तर की क्रांति का परिणाम यह हुआ कि सभी इंसान एक ही मानव जाति का अंग दिखाई देने लगे। इंसानी बराबरी की यह सोच बहुत तेज़ी से सारी दुनिया में छा गई। सबसे पहले इसने मदीना पर अपना प्रभाव जमाया, इसके बाद दमिश्क़ इसका केंद्र बना, फ़िर वह बग़दाद से स्पेन और सिसली होती हुई यूरोप के दूसरे देशों में प्रविष्ट हो गई।

यूरोप के एक बड़े भाग ने हालाँकि धर्म के रूप में इस्लाम को स्वीकार नहीं किया, लेकिन संपूर्ण जगत के बारे में इस्लाम के एकेश्वरवादी दृष्टिकोण को उन्होंने पूरी तरह से ले लिया और इससे भरपूर लाभ उठाया। सच्चाई यह है कि यूरोप की

वैज्ञानिक और लोकतांत्रिक क्रांति इस्लाम की एकेश्वरवादी क्रांति का 'सेकुलर एडिशन' है। इस्लामी क्रांति के परलोक के पहलू को अलग करके इसके सांसारिक पहलू को अपनाने का ही दूसरा नाम पश्चिम की आधुनिक क्रांति है।

ऐसी स्थिति में यह कहने में अतिशयोक्ति (exaggeration) नहीं होगी कि मानव इतिहास से अगर इस्लाम को निकाल दिया जाए तो इसी के साथ सभी सामाजिक और मानव विकास को भी निकाल देना पड़ेगा। इसके बाद दुनिया फिर से उसी अंधकार युग में चली जाएगी, जहाँ वह इस्लामी क्रांति के आने से पहले एक बहुत लंबे समय के बौद्धिक बंधन में जकड़ी हुई थी।

सोच-विचार की आज़ादी

प्राचीनकाल में इंसान को सोच-विचार करने और राय व्यक्त करने की आज़ादी नहीं थी। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) के शब्दों में, वैचारिक नियंत्रण (censorship) के कुछ रूप सभी जातियों में प्रचलित थे, चाहे वह छोटी हो या बड़ी। वैचारिक नियंत्रण की यह स्थिति दुनिया के सभी भागों में और इतिहास के हर युग में पाई जाती रही है।

Some form of censorship has appeared in all communities, small and large, in all parts of the world, at all stages of history. (3-1083)

'द एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलिजन एंड एथिक्स' में 25 पेज की एक थीसिस (शोध) है, जिसका शीर्षक 'उत्पीड़न' (persecution) है। इस विस्तृत और ब्योरेवार शोध में बताया गया है कि किस प्रकार प्राचीन इतिहास के हर युग में सारी दुनिया में लोग सोच-विचार की स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित थे। सभी लोग विवश थे कि वे वही सोचें, जो शासक वर्ग की सोच है। शोध में इस प्रकार के विवरण और जानकारी देते हुए बताया गया गया है कि "प्राचीन मानव समाज बुनियादी तौर पर असहनशील था।"

"Ancient society was essentially intolerant." (p. 743)

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में वैचारिक नियंत्रण पर 8 पेज की एक थीसिस है, जिसमें विस्तार से बताया गया है कि प्राचीन युग में यह किस प्रकार सारी दुनिया में प्रचलित था।

"प्राचीन चीन में नागरिकों को सोच-विचार की आज़ादी नहीं थी। सम्राट शी हुआंग टी (Shi-Huang-Ti) ने 'चीन की महान दीवार' बनवाई, लेकिन इसी के साथ उसने 213 ईसा पूर्व में आदेश दिया कि सारी पुस्तकें जला दी जाएँ। इस आदेश से स्वतंत्र केवल वह पुस्तकें थीं, जो दवा और कृषि जैसी हानिरहित विषयों से संबंध रखती थीं। पाँच सौ विद्वानों को मार डाला गया और हज़ारों को भगा दिया गया। शाही आदेश में यह भी शामिल था कि 30 दिनों के अंदर जो लोग पुस्तकें नहीं जलाएँगे, उनको कड़ी सज़ा दी जाएगी।"

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. III, p. 1083]

इसी प्रकार के अत्याचार का शिकार होने वाले दूसरे लोग स्पार्टन्स, शुरुआती रोमन, यहूदी और ईसाई थे।

इतिहासकार और जीवनी-लेखक प्लूटार्क (46-120 ई०) ने यूनान के बारे में लिखा है—

"प्राचीन स्पार्टा के लोग केवल व्यावहारिक और कामचलाऊ ज़रूरतों के लिए लिखना-पढ़ना सीखते थे। उनके यहाँ दूसरी सभी शैक्षणिक प्रभाव वाली पुस्तकों और साथ में विद्वानों के उपदेशों पर पाबंदी लगी हुई थी।"

(Plutarch— The Ancient Customs of the Spartans)

एथेंस में कला और दर्शनशास्त्र ने उन्नति की, लेकिन बहुत से कलाकारों और दार्शनिकों जिनमें सुकरात और अरस्तू जैसे लोग भी शामिल हैं, उनको या तो क़ैद कर लिया गया या देश-निकाला दे दिया गया, बहुत से विद्वानों की हत्या कर दी गई और कुछ लोगों ने भागकर अपनी जान बचाई।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. III, p. 1084]

प्राचीन रोम में सोच-विचार की आज़ादी को नियंत्रण में करने के लिए 443 ईसा पूर्व में एक स्थायी सरकारी विभाग की स्थापना की गई। रोमन अधिकारियों की आलोचना देशद्रोह समझा जाता था। लेख में कहा गया है कि राजद्रोह में विचारों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करना, संकेत, व्याख्या और आलोचना को भी सम्मिलित किया गया था। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के शोध-लेखक ने इस

संबंध में रोम के कई प्रमुख नागरिकों के उदाहरण दिए हैं, जिन्हें केवल इसलिए कड़े दंड दिए गए कि उन्होंने शासक वर्ग पर आलोचनात्मक टीका-टिप्पणी की थी।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. III, p. 1084]

मसीह के बाद शुरुआती तीन सदियों तक यहूदी और ईसाई केवल धार्मिक मान्यताओं में मतभेद की बुनियाद पर एक-दूसरे के दुश्मन बने रहे। पहले यहूदियों ने ईसाइयों को अपने अत्याचार का निशाना बनाया। इसके बाद चौथी शताब्दी में जब ईसाई धर्म साम्राज्य का धर्म बन गया तो ईसाइयों ने यहूदियों से क्रूरतापूर्वक बदला लेना शुरू किया।

[*Encyclopaedia Britannica* (1984), Vol. III, p. 1084-85]

प्राचीन युग में सोच-विचार की आज़ादी पर पाबंदी का एक कारण यह था कि विकृत धर्मों ने जिन स्वनिर्मित आस्थाओं पर अपनी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था-प्रणाली का ढाँचा खड़ा कर रखा था, उसके लिए वैचारिक और बौद्धिक स्वतंत्रता का वातावरण ख़तरनाक बन सकता था, शासक वर्ग तथा धार्मिक अधिकारियों को डर और अंदेशा था कि अगर स्वतंत्र रूप से खोज और जाँच-प्रयोग के कामों को बढ़ावा मिला तो वे लोगों की नज़रों में अपनी सच्चाई को बरक़रार न रख सकेंगे, जिसे उन्होंने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनता को परोसा है।

16वीं और 17वीं सदी में यूरोप में जिन लोगों ने वैज्ञानिक अंदाज़ से चिंतन-मनन करना चाहा, उन पर ईसाई चर्च ने अत्याचार किए। इसका कारण यही ऊपर कहा गया अंदेशा था। इन अत्याचारों की विस्तृत जानकारी ड्रेपियर की पुस्तक 'विज्ञान और धर्म के बीच टकराव' (Conflict between Science and Religion) में देखी जा सकती है। हालाँकि इसका अधिक सही नाम 'विज्ञान और ईसाइयत में टकराव' होगा।

इंसानी ऊँच-नीच

प्राचीन युग में सोच-विचार और राय व्यक्त करने पर लगी पाबंदी का कारण भी वही अनेकेश्वरवाद था, जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की गई है। अनेकेश्वरवादी विश्वास और धारणाओं के तहत यह समझ लिया गया था कि जो व्यक्ति राजा

के तख़्त पर बैठा हुआ हो, वह साधारण लोगों से अलग होता है। उस युग में राजा को किसी-न-किसी रूप में ईश्वरीय या ईश्वरीय विशेषताओं का मालिक समझा जाता था। आम आदमी केवल प्रजा की हैसियत रखते थे और राजा को उनके ऊपर ईश्वरीय शासक की हैसियत प्राप्त थी।

यही अनेकेश्वरवादी या अंधविश्वासी आस्था थी, जिसने लोगों से विचार और राय व्यक्त करने की आज़ादी का अधिकार छीन रखा था। यह समझ लिया गया था कि जो राजा की राय है, वही सही राय है और दूसरे लोगों को केवल राजा की राय का अनुपालन करना है। उन्हें राजा की राय से अलग राय बनाने का कोई अधिकार नहीं। यही वह ग़लत आस्था थी, जिसने प्राचीन युग में सोच-विचार और राय व्यक्त करने की आज़ादी को समाप्त कर दिया था।

7वीं सदी में जब इस्लाम का आगमन हुआ तो उसने मानव जाति के लाभ के लिए घोषणा की कि हर प्रकार की प्रशंसा और महानता केवल एक ईश्वर के लिए है और ईश्वर की दृष्टि में सभी इंसान समान हैं, सब एक-दूसरे की तरह हैं। पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने एक बार नहीं, बल्कि कई अवसरों पर अलग-अलग अंदाज़ से इस सच्चाई की घोषणा की कि सभी इंसान भाई-भाई हैं। यही वह चीज़ है, जिसे धार्मिक शब्दावली में एकेश्वरवाद कहा जाता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस सच्चाई की न केवल घोषणा की, बल्कि इसी बुनियाद पर एक संपूर्ण क्रांति करके इसे व्यावहारिक रूप से दुनिया में स्थापित कर दिया।

पैग़ंबरी के शुरुआती दौर में आपने इसी सच्चाई का प्रचार मौखिक रूप से किया था। इसके बाद जब अरब में आपको राजनीतिक वर्चस्व प्राप्त हो गया तो आपने एक शासक की हैसियत से इसकी घोषणा इस प्रकार की—

“निःसंदेह ईश्वर ने अज्ञानता के युग के गर्व और जातीय गर्व का तुमसे ख़ात्मा कर दिया, अब इंसान या तो अपने नैतिक मूल्यों के तहत श्रेष्ठ और सम्माननीय है या नीच और गुनाहगार है। सभी लोग आदम की संतान हैं और आदम मिट्टी से पैदा किए गए।”

इस प्रकार इस्लाम ने इंसानों के बीच जाति, नस्ल, रंग और पद जैसी बुनियादों पर भेदभाव को समाप्त कर दिया और नए सिरे से शिष्टाचार और नैतिक आधार पर इनकी व्यवस्था स्थापित की।

वैचारिक स्वतंत्रता

इस्लाम ने एकेश्वरवाद की बुनियाद पर जो क्रांति की, उसके बाद इतिहास में पहली बार एक इंसानी बराबरी का समाज अस्तित्व में आया और एक ऐसा समाज, जिसमें किसी रोक-टोक के बिना हर व्यक्ति को विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता थी।

ईरान का सम्राट ख़ुसरो प्रथम (531 से 579 ई०) सासानी सल्तनत का शासक रहा है। उसे ईरान के न्यायवादी और श्रेष्ठ राजाओं में गिना जाता है, लेकिन उसके समय में भी यह स्थिति थी कि एक बार उसके दरबारियों में एक व्यक्ति ने राजा और राजनीति पर आलोचनात्मक टीका-टिप्पणी करने की हिम्मत की तो उसे राजा की ओर से यह दंड दिया गया कि उसी दरबार में उसके सिर पर लकड़ी मार-मारकर उसकी हत्या कर दी गई। ऐसा दंड कोई अपवाद नहीं था, प्राचीनकाल में यही स्थिति सारी दुनिया की थी। शासक के विरुद्ध किसी भी प्रकार का वैचारिक मतभेद या भिन्नता राजद्रोह के समान समझी जाती थी, जिसका सबसे कम दंड यह था कि उसे मारकर उसी समय समाप्त कर दिया जाए।

इस्लाम ने न केवल इसके विरुद्ध घोषणा की, बल्कि समाज में वह हालात पैदा किए कि लोगों के अंदर यह हिम्मत पैदा हुई कि वे इस पुरानी परंपरा को तोड़ें और अपने सरदारों तथा शासकों के विरुद्ध खुले तौर पर अपनी राय और अपने मतभेदों को व्यक्त कर सकें।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद को अरब में राजनीतिक शासक की हैसियत प्राप्त थी। इसके बावजूद आप आम लोगों की तरह रहते थे। हर व्यक्ति आपके सामने स्वतंत्रतापूर्वक अपनी राय और अपने मतभेदों को व्यक्त कर सकता था। इसका एक उदाहरण 'बदर' अभियान की घटना है। इस अभियान की यात्रा के दौरान आपने एक विशेष स्थान पर पड़ाव डाला। एक व्यक्ति जिसका नाम हबाब इब्न अल-मंज़र था, वह सामने आया और सीधे तौर पर पैग़ंबर-ए-इस्लाम को संबोधित कर कहा कि यह स्थान जहाँ आप ठहरे हैं, वह ईश्वर के आदेश से है या आप अपनी निजी राय के तहत यहाँ ठहरे हैं? आपने कहा कि

मैं अपनी निजी राय से यहाँ ठहरा हूँ। यह सुनकर हबाब इब्न अल-मंज़र ने कहा कि यह तो कोई ठहरने की जगह नहीं, लोगों को साथ लेकर यहाँ से उठिए।

इस घटना का विस्तृत विवरण सीरत[1] की किताबों में मौजूद है। यहाँ हम केवल यह बताना चाहते हैं कि एक आम आदमी वक़्त के शासक के विरुद्ध बिना हिचक 'आलोचनात्मक टिप्पणी' करता है, लेकिन कोई उसका बुरा नहीं मानता और स्वयं पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस दुस्साहस के विरुद्ध कोई ख़राब या अनैतिक प्रतिक्रिया नहीं दिखाई, बल्कि साधारणतः केवल यह पूछा कि तुम्हारी यह राय क्यों है और जब उसने अपनी राय की महत्ता बताई तो आपने तुरंत उसे स्वीकार कर लिया और वहाँ से उठकर अगली मंज़िल के लिए रवाना हो गए।

इस्लामी एकेश्वरवाद के तहत आने वाली यह क्रांति इतनी शक्तिशाली थी कि इसके प्रभाव को पूरे इस्लामी इतिहास में लगातार महसूस किया गया। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के बाद ख़लीफ़ा-ए-राशीदून के युग में कोई भी व्यक्ति चाहे उसकी सामाजिक हैसियत मामूली ही क्यों न हो, वह ख़लीफ़ा के ऊपर स्वतंत्रतापूर्वक आलोचनात्मक टीका-टिप्पणी कर सकता था और अपनी राय तथा अपने मतभेदों को व्यक्त कर सकता था। उनके समय का इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है।

यह इस्लामी क्रांति इतनी शक्तिशाली थी कि वह बाद के युग में उस समय भी शेष रही, जबकि ख़िलाफ़त की जगह राजतंत्र स्थापित हो गया। इस्लाम के बाद के चौदह सौ वर्ष के इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ कि कोई व्यक्ति जनता की ज़बान बंद करने में सफल हो सके।

धार्मिक सहनशीलता के कुछ उदहारण

पैग़ंबर और पैग़ंबर के साथियों के माध्यम से जो इस्लामी क्रांति आई, वह साधारण अर्थों में केवल एक धार्मिक क्रांति न थी, बल्कि उसने लगभग पूरी आबाद दुनिया को प्रभावित किया। इस्लाम के अनुयायियों ने अरब की सीमाओं से परे शक्तिशाली शासन की स्थापना की। इन सभी नई इस्लामी रियासतों में हर

---

[1] हज़रत मुहम्मद की जीवनी।

जगह सभी लोगों को पूरी तरह से अपने विचार अभिव्यक्त करने की आज़ादी प्राप्त रही। यह सिलसिला एक हज़ार वर्ष तक जारी रहा। इस पूरी अवधि में कहीं भी मानवीय चिंतन-मनन पर प्रतिबंध नहीं लगाए गए। यहाँ हम ब्रिटिश प्रोफ़ेसर सर अर्नोल्ड की पुस्तक 'द प्रीचिंग ऑफ़ इस्लाम' से इस संबंध में लिखे गए कुछ प्रमुख अंश का वर्णन करते हैं।

प्रोफेसर अर्नोल्ड ने स्पेन के एक मुसलमान के भाषण का वर्णन इस प्रकार किया है—

"यह सही है कि जो व्यक्ति हमारा दीन स्वीकार करने का फ़ैसला करे, हम उसे गले लगाने के लिए तैयार रहते हैं, लेकिन हमारा क़ुरआन हमें इसकी अनुमति नहीं देता कि हम दूसरों की अंतरात्मा और विवेक पर अत्याचार करें...।"

(T.W. Arnold, *The Preaching of Islam,* p. 143)

प्रोफेसर अर्नोल्ड तुर्कों की धार्मिक सहनशीलता की चर्चा करते हुए लिखते हैं—

"उन्होंने (ओटोमन सम्राटों ने) यूरोपीय देश ग्रीस में विजय के बाद ...कम-से-कम दो सौ वर्ष तक अपनी ईसाई प्रजा के साथ धार्मिक मामलों में ऐसी सहनशीलता का सबूत दिया, जिसका उदाहरण उस युग में यूरोप के शेष भागों में बिल्कुल ही नहीं मिलता।"

(T.W. Arnold, *The Preaching of Islam*, p. 157)

17वीं सदी में रोमनकालीन प्राचीन यूनानी शहर एंटीओक के पैट्रिआर्क (बिशप) मैकेरियस ने तुर्कों की इस विशेषता के कारण उनके लिए दुआ की थी—

"ईश्वर तुर्कों की सल्तनत को हमेशा-हमेशा के लिए बनाए रखे, क्योंकि वे अपना जज़िया (कर) लेते हैं, लेकिन प्रजा के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते, चाहे वह ईसाई हों या यहूदी या सामरी।"

(T.W. Arnold, *The Preaching of Islam,* p. 158-59)

प्रोफ़ेसर अर्नोल्ड ने मुस्लिम शासन के युग में विचार और राय व्यक्त करने की आज़ादी के बहुत से उदाहरण दिए हैं। इसके बाद वे लिखते हैं कि रोमन सल्तनत के वह प्रदेश और सूबे जिनको मुसलामानों ने बड़ी तेज़ी से

विजित किया था, वहाँ के लोगों ने अचानक अपने आपको ऐसी सहनशीलता के माहौल में पाया, जो कई सदियों से उनके लिए अनजान बने हुए थे।...इस प्रकार की सहनशीलता 7वीं सदी के इतिहास में कितनी आश्चर्यजनक थी—"...Such tolerance was quite striking in the history of the seventh century."

धार्मिक स्वतंत्रता

टी.डब्लू. अर्नोल्ड ने अपनी पुस्तक 'द प्रीचिंग ऑफ़ इस्लाम' में कहा है कि अब्बासी वंश के ख़लीफ़ा अल-मामून (813-833 ई०) ने सुना कि इस्लाम के विरोधी यह कह रहे हैं कि इस्लाम अपनी दलील और प्रमाण की शक्ति से सफल नहीं हुआ, बल्कि अपनी तलवार की शक्ति से सफल हुआ है। उसने दूर-दूर के क्षेत्रों में संदेश भेजकर हर धर्म के विद्वानों को बग़दाद में जमा किया और फिर मुस्लिम विद्वानों को बुलाकर दोनों को एक बहुत बड़ी सभा में बहस और तर्क-वितर्क की दावत दी। इस ज्ञानपूर्ण और बौद्धिक मुक़ाबले में इस्लाम के विद्वानों ने आरोप के विरुद्ध अपने धर्म का बचाव किया और ग़ैर-मुस्लिम विद्वानों ने स्वीकार किया कि मुसलमानों ने संतोषजनक ढंग से अपनी बात को साबित कर दिया है।

(T.W. Arnold, *The Preaching of Islam*, p. 86)

अर्नोल्ड ने लिखा है—

"ख़लीफ़ा अल-मामून इस्लाम की आस्था के प्रचार-प्रसार के मामले में बहुत अधिक उत्साहित और सक्रिय थे। इसके बावजूद उन्होंने कभी भी अपनी राजनीतिक शक्ति को इस्लाम के प्रचार के लिए प्रयोग नहीं किया और न ही कभी किसी को बलपूर्वक मुसलमान बनाया।"

"बग़दाद में आयोजित इस अंतर्धार्मिक सभा (inter-religious assembly) में दूसरे धर्मों के जो विद्वान सम्मिलित हुए, उनमें एक यज़दानबख़्त था। वह मानी पंथ (Manichaeism) से संबंध रखता था और ईरान से आया

था। यज़दानबख़्त ने मुस्लिम विद्वानों की बातें सुनीं तो वह इस्लाम की स्पष्ट तर्कशक्ति से इतना प्रभावित हुआ कि वह पूरी तरह से मौन हो गया।

सभा के बाद अल-मामून ने उसे दरबार में बुलाया और उससे कहा कि अब तुम्हें इस्लाम स्वीकार कर लेना चाहिए। यज़दानबख़्त ने इस्लाम स्वीकार करने से इनकार कर दिया और कहा— 'अमीरुल मोमिनीन, मैंने आपकी बातें सुनीं और आपकी राय को जाना, लेकिन आप तो वह इंसान हैं, जो किसी को अपना धर्म छोड़ने पर विवश नहीं करते और बलपूर्वक किसी को मुसलमान नहीं बनाते।' यज़दानबख़्त के इनकार के बाद अल-मामून ने अपनी बात वापस ले ली और जब यज़दानबख़्त बग़दाद से अपने देश वापस जाने लगा तो उन्होंने हथियारबंद अंगरक्षकों को यज़दानबख़्त के साथ कर दिया, ताकि जज़्बात से भरा हुआ कोई व्यक्ति उसका अपमान न कर सके।"

(T.W. Arnold, *The Preaching of Islam,* p. 56)

इस्लाम में हर प्रकार की विचारधारा को आभिव्यक्त करने की आज़ादी है और इसी के साथ हर विचार और मत वाले का सम्मान भी।

आधुनिक युग और इस्लाम

आधुनिक युग में सोच-विचार की आज़ादी को सबसे बेहतर भलाई (Summum Bonum) समझा जाता है। आम तौर पर यह माना जाता है कि यह स्वतंत्रता पश्चिम की वैज्ञानिक क्रांति का परिणाम है। यह सही है कि इसका तात्कालिक और निकटतम कारण आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति है, लेकिन स्वयं यह वैज्ञानिक क्रांति, जैसा कि पिछले पेजों में विस्तार से बताया गया है, इस्लाम की एकेश्वरवादी क्रांति का परिणाम थी।

फ्रांसीसी विचारक और दार्शनिक जीन जैक्वेस रूसो (1712-1778 ई०) को आधुनिक लोकतंत्र के संस्थापकों में गिना जाता है। उसने अपनी पुस्तक 'द सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (The Social Contract) इन शब्दों के साथ शुरू की थी—

"इंसान आज़ाद पैदा हुआ था, लेकिन मैं इसे ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ पाता हूँ।"

इस प्रकार इंसानी दास्तान पर व्यक्त किए गए ये शोक के जज़्बात वास्तव में रूसो की देन नहीं हैं। यह दरअसल इस्लामी ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ (586-644 ई०) के उस शानदार कथन की गूँज है, जो उन्होंने अपने मिस्र के गवर्नर अम्र इब्न अल-आस को संबोधित करते हुए कहा था, "ऐ अम्र! तुमने कब से लोगों को ग़ुलाम बना लिया, हालाँकि उनकी माँओं ने उन्हें आज़ाद पैदा किया था?"

आधुनिक युग में यूरोप में और उसके बाद सारी दुनिया में स्वतंत्रता और लोकतंत्र की जो क्रांति आई, वह उस क्रांति का दूसरा क़दम था, जो इस्लाम के द्वारा 7वीं सदी में शुरू हुआ था।

मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा

संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने 1948 में वह चार्टर अर्थात् वह अधिकार-पत्र स्वीकृत किया, जिसे 'द यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ़ ह्यूमन राइट्स' कहा जाता है। इसके आर्टिकल-18 में यह कहा गया है—

"हर आदमी को सोच-विचार, मन, अंतरात्मा और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में यह स्वतंत्रता भी सम्मिलित है कि आदमी अपने धर्म या आस्था को बदल सके और अपने धर्म या आस्था को या तो अकेले या दूसरों के साथ मिलकर और खुलेआम या गुप्त रूप से प्रकट कर सके या दूसरों को इसकी शिक्षा दे।

संयुक्त राष्ट्र संघ का वह चार्टर जिसका सार ऊपर के लेख में है, वह भी वास्तव में संयुक्त राष्ट्र का कारनामा नहीं, बल्कि उसी इस्लामी क्रांति की एक देन है, जो संयुक्त राष्ट्र से एक हज़ार वर्ष से भी अधिक पहले अस्तित्व में आई थी।

इस्लाम ने इतिहास में पहली बार अनेकेश्वरवाद पर आधारित उस व्यवस्था-प्रणाली को समाप्त किया, जिसने इंसान और इंसान के बीच अंतर व भेदभाव की सोच पैदा कर दी थी। इसी ग़लत बँटवारे का परिणाम अन्यायों

से भरा ऊँच-नीच का समाज था, जो सभी प्राचीन युगों में लगातार पाया जाता रहा है।

इस्लाम ने एक ओर इस मामले में मानवीय सोच को बदला, दूसरी ओर उसने बहुत बड़े पैमाने पर व्यावहारिक क्रांति करके इंसानी आज़ादी और सम्मान का एक नया युग शुरू किया। यह क्रांति इतिहास में लगातार यात्रा करती रही, यहाँ तक कि वह यूरोप में प्रविष्ट हो गई और उसे अपने प्रभाव में ले लिया। सदियों की यात्रा में यह क्रांति मज़बूती के साथ आगे बढ़ती रही और अंततः स्वतंत्रता और लोकतंत्र की आधुनिक क्रांति का कारण बनी। आधुनिक यूरोप की लोकतांत्रिक क्रांति उसी इस्लामी क्रांति का धर्मनिरपेक्ष या सेकुलर एडिशन है, जिसे बहुत पहले 7वीं सदी के अरब में ईश्वर के अंतिम पैग़ंबर ने पहली गति दी थी।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाए तो यह सच्चाई सामने आएगी कि इस्लाम ही आधुनिक युग का वास्तविक निर्माता है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी और सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से भी।

------------------------------xxxxx-----------------------

इबादत : एक ईश्वर की पूर्ण समर्पण भाव एवं निष्ठा से भक्ति एवं उपासना करना।

पैग़ंबर : ईशदूत; ईश्वर द्वारा नियुक्त व्यक्ति, जिसने ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाया।

दाओी : ईश्वर का संदेश लोगों तक पहुँचाने वाला व्यक्ति।

फ़रिश्तों : ईश्वर का वह दूत, जो उसकी आज्ञानुसार काम करता है।

हदीस : हज़रत मुहम्मद के कथन, कर्म एवं मार्गदर्शन।

कुफ़्र : ईश्वर का इंकार करना।

वह्य : ईश्वर का वह संदेश, जो पैग़ंबरों को फ़रिश्ते जिब्रील द्वारा भेजा जाता था।

क़यामत : सृष्टिके अंत और विनाश का दिन।

सुन्नत : तरीक़ा, पद्धति; वह काम जो हज़रत मुहम्मद ने किया हो।

ख़लीफ़ा : पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारी का पद।

ख़लीफ़ा-ए-राशीदून : पैग़ंबर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात बारी-बारी से उनके उत्तराधिकार को सँभालने वाले शुरुआती चार ख़लीफ़ाओं अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली को 'ख़लीफ़ा-ए-राशीदून' कहा जाता है।

तक़वा : ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा तथा भय रखते हुए दुष्कर्मों एवं बुराइयों से परहेज़ करना।

क़िब्ती : मिस्र की पुरानी जाति।

सीरत : हज़रत मुहम्मद की जीवनी।